

सिंहिणी व्रजाङ्गा

डॉ० गौरकुण गोस्वामी

शुभ सामान्य

कलित कीर्ति कलापक कपिनी
कलित लोकललायन केज्वला,
विद्विधवेदविलास विलासिनी,
जयति सत्यव्रतार्थ सरस्वती ॥

श्रीज० सत्यव्रत शास्त्री-

सदर सगर्भ

गौरवें छा गे सकयी-

२६ फरवरी १९६३



विश्वहिणी ब्रह्माङ्गा

रचयिता—

आचार्य डा० गौरकृष्ण गोस्वामी, शास्त्री

आयुर्वेद-शिरोमणि, काव्य पुराण दर्शनतीर्थ
(सेवानिर्वृत्त-राजपत्रित चिकित्साधिकारी)

अभिनव चैतन्य आयुर्वेदिक औषधालय

श्रीसाधारणपरिसर, श्रीधाम इन्दावन

प्रकाशक—
अनिलकुमार गोस्वामी एम.एस.सी.
श्रीधाम वृन्दावन-२८१ १२१

प्रथमावृत्ति—५००

(श्रीचैतन्याविर्भाव पञ्चशती शृङ्खलान्तर्गत प्रकाशन)

मूल्य—पच्चीस रुपये

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्राप्ति-स्थान—
डा० अशोककुमार गोस्वामी एम.एस.सी., पी.एच.डी.
दूरभाष सांकेतिक (०५६६४) = २-४०२

मुद्रक—
रतन प्रेस, अठखम्भा, वृन्दावन
फोन : ८२२६१

समर्पण-

लीला ललित ललाम काम शत कोटि विनिन्दित,
 निरवधि विधि हर महरि हारि हरि ध्यान निरतरत ।
 अभिनव जलधर श्याम तामरस नयन पिच्छ धर,
 पीत वसन मनहरन राधिका रमण मुरलिकर ॥
 ललित लवङ्ग निकुञ्ज मञ्जु सिंहासन सोहत,
 राजत व्रज युवद्वन्द्व मन्दस्मित सुर नर मोहत ।
 सेवत चरण सरोज रोज भरि ओज नवेली,
 दामोदर वरवधू रूपरसराशि चमेली ॥
 तिहि कर सरसिज सुमन स्तवक स्तव सरस सुगन्धित,
 भाव भक्ति रसपूर मूरिमय प्रणय प्रवन्धित ॥
 ग्रन्थ ग्रन्थिहर विषम विषय विष व्याधि निवारत,
 'गौरकृष्ण' अवलम्ब अम्ब ! मन मुदित समर्पित ॥



(श्री) राधावल्लभपादपल्लवजुषां गोस्वामिनां श्रीमतां,
 राधेश्याम महीभृतां प्रथमजा श्रेष्ठा निकुञ्जाश्रिता ।
 श्रीराधारमणांघ्रि - सेवनरता दामोदरामोदिनी,
 जीयात् मातृपदाश्रिता परतरा नित्यं चमेलीश्वरी ॥

सरस-स्नेह-सम्पुष्ट-सुतः—

गौरकृष्णः

निकुञ्ज प्राप्ति-

कार्तिक शुक्ला पंचमी, शनिवार, १९८८ वै०

पारताविकम् -

विरहिणी ब्रजाङ्गना—

विविधविद्याविलासविलक्षण-विचक्षणैर्विविध-विषय - विश्लेषण-विकलै-विधिरिव काव्यसृष्टिप्रकाशै-विष्णुरिव विविधयज्ञपरिपूत-विनयशौलैर्वसुधरा वसुभूताऽऽभरणैर्वृन्दावन-वासरसिकैः विकल्थ-नविकल्मषै-विचित्र-विचारणा-विधि-विचारकैर्वितत वितथ वितण्डा-विज्वरैर्विश्वधा विश्वस्त विश्वंकर विश्रयैर्विषम विषाद-विवारविष्क-म्भकैर्विपुल विशाखा ललिता सखि विलासकुतूहलप्रसारकैः काव्यपुराण-दर्शनतीर्थैः गोस्वामिकुलकमलकमलवान्धवैः श्रीगौरकृष्णमिवापरैर्गौर-कृष्णैरन्तः करणनिहित शब्दगुम्फनकुशलैर्वाङ्मये विरचितेयं विरहिणी ब्रजाङ्गनाकृतिः ।

नवनवभावविभाविभासितैरनवद्यविद्याविद्योतितैर्हृदिभृत् पद्यै रचिता ब्रजाङ्गना काव्यसुधा निमज्जयतीव साहित्यकासारे, काव्यकलाकुशलान् आह्लादयतीव, ब्रजरसरसिक-शेखरान् नर्तयतीव, ब्रजाङ्गनाविरहवेदनाविकलमूकान् धर्षयतीव, कठिन कलिकाल-कलुषितान्तःकरणकलितान् मूर्च्छयतीव, राधारससरित् प्रवाहपथिकान् तर्जयतीव, नित्य-नवीनभावविरहितसुरभारतीविवेचनमुखरान् आनन्दयतीव, वंशोदरकरकमलदलकलितललितवंशीकलनिनद गलदमृतघनसरसि सहस्रसरभरभरितान् परामृशतीव, कुसुमशरशर-समरकुपितमदगोपीकुचकलशधुसृणरसलसित-मुकुन्दभक्तान् प्रत्याय-तीव,—नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं विकसित नलिनास्यं चारु-वर्हाविचूलं कमपिनिखिलसारं गोपीकुमारं श्रीसाधारमणरमणप्रतिष्ठा-प्रतिष्ठापकं गोकुलाङ्गणमङ्गलं वल्लभीकुलवल्लभम् नितराम् ।

पांच

क्वचिदस्यां मन्दाक्रान्ताक्रान्तैः सरसपद्मैः शब्दालङ्कारमाधुरी
यथा—

चञ्चञ्चन्द्रोज्ज्वलदललसच्चन्द्रिकां चारुचूडाम् । (२८)

क्वचित् सूक्ति परिचर्यामाधुरी—

यथा—लोके लोकाः विधिविलसितां भोग्यतामाप्नुवन्ति । (१८)

क्वचित्—

कुब्जानामा नवप्रणयिनी हुंकृतिः घोररूपा । (७२)

क्वचित् न्यासदिग्दर्शनं यथा—

सोऽयं कृष्णः नवनटवरः श्यामलः नन्दसूनुः चौराचार्यः— (६३)

क्वचित् व्याकरणसूत्रोद्धरणम् यथा—

गच्छन् ग्रामं स्पृशति च तृणं स्थानतः सम्प्रयाहि । (७)

नव वृन्दावन दर्शनं माधुरी च सर्वथैवानन्दपूरप्रवाहमावहति ।

अहमस्याः सर्वथैवाभिनन्दनं कविवन्दनपूर्वकममन्दानन्देन
व्याहरामि ।

श्रीगौरकृष्णरचिता कवितामुक्ताक्षरैरिवग्रथिता ।

राधारमणप्रेष्ठा विरहिणी व्रजाङ्गना जयतात् ॥ इति

डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

डी-लिट्-पी-एच.डी.

आचार्य नव्य व्याकरण, साहित्य, पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र, फलित

ज्योतिष, बल्लभवेदान्त काव्यतीर्थ, एम., ए. साहित्यरत्न आदि

अध्यक्ष प्रवाचक-प्राच्यदर्शनमहाविद्यालय, वृन्दावन

॥ श्रीहरिः ॥

प्राग् निवेदन

श्रीधाम वृन्दावन की संस्कृत और ब्रजभाषा-सेवा की एक दीर्घकालीन अक्षूण्ण परम्परा रही है। यहाँ की वाणीगत शब्दश्री से अनगिनती मानस तरंगायित होते रहे हैं। श्रीराधारमणजी के सेवायत, “श्रीगोपाल-भट्ट गोस्वामी” जैसे महान् ग्रंथ के प्रणेता डा० श्रीगौरकृष्ण गोस्वामीजी ने अपनी काव्य-साधना और मधुरस्थ-निष्ठा के वशीभूत होकर संस्कृत जगत् को एक बहुत मार्मिक और हृदयावर्जक रचना “विरहिणी-व्रजांगना” नाम से दी है। यह कृति आकार में लघु किन्तु भाव तथा हृदयवैशद्य की दृष्टि से बहुत विशाल है। इसके प्रणेता ने भक्तिरस में निमग्न होकर भी आधुनिक विकृतिग्रस्त विषमतरंग परिस्थितियों को सम्मार्जिवत् करने के लिए ब्रज-वृन्दावन भाव-दशा का भी इसमें स्थान-स्थान पर विमर्श किया है। कालिदास ने ‘मेघदूत’ प्रणीत कर जैसे भारतवर्ष की सुदीर्घ यात्रा कर डाली वैसे ही “विरहिणी-व्रजांगना” नाम्नी इस अति सरस कृति में-वृन्दावन की ऊष्मिन्त भावोच्छलित यात्रा डा. श्रीगौरकृष्ण गोस्वामी ने करा डाली है। इस यात्रा का आयोजक गलदश्रु सुकवि सभी सम्प्रदायों के इष्ट-विग्रहों को भरपूर आत्मीयता और समंजित मन से अपने स्मरण में लाता है और वर्तमान वृन्दावन की श्रीशोभा तथा भक्ति ऊर्जा के रस-केन्द्रों का वर्णन बड़े पुनीत मन से करता है, यह एक अवदात और उन्नत चेतना का प्रतिफल है।

ज्ञानगरिष्ठ उद्धव रासरसेश्वर श्रीकृष्ण के सखा थे। वे ज्ञान-योग का दम्भ लेकर ब्रज-वृन्दावन जाते हैं किन्तु उनकी अहम्-अस्मिता भावभरित व्रजांगनाओं की विरह ज्वाला में दग्ध हो जाती हैं। गोपिकाओं के हृदयोद्गारों में भावाकृति डा० श्रीगौरकृष्ण गोस्वामी

सात

जी का हृदय पूरी तरह निमग्न हो गया है। यही नहीं प्रकृति की रमणीक छवियों के साथ विरह-विदग्धा गोपांगनाओं के अन्तः ऊष्मित उद्गार मधुगेय गीत बन गए हैं। भाषा की स्निग्धता महाकाव्यों का स्मरण करा देती है। उसमें श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद, षड्गोस्वामियों और व्रज-वृन्दावन के ललित वाणीकारों की ध्वनि भी अंकित है। भाषा के अक्षर-अक्षर हो जाते हैं। धाराधर वेगवती वर्षा की भाँति हृदयस्थ गुहा में मन की आँखें सजल अश्रु निपात कराती हैं।

यह काव्य पारम्परिक तारतम्य में होते हुए भी नवीन भावोद्भावनायों के कारण नव्यता लिए हुए हैं। स्थान-स्थान पर आलङ्कारिक उद्धावनायें, तथा दीर्घ समासान्त पदों की निराली छटायें वरवस मन को मुग्ध कर देती है—

‘क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयताया.’ का प्रत्यक्ष अनुभवों से यह सुकृतिजन-वेद्यकृति अनुपमेय और आस्वादनीय है।

ऐसा हृदयहारी शतक कोई गौरकृष्ण में निमग्न मन ही लिख-समझ सकता है। कृति सहृदयों को अवश्य रुचेगी। आशा करता हूँ आदरणीय डा० श्रीगौरकृष्ण गोस्वामीजी इसी प्रकार सद्ग्रंथों को रचते रहेंगे। दीर्घ आयु की स्वस्तिक कामनाओं के साथ,

डा० नरेशचन्द्र बंसन

निदेशक

६ नवम्बर, १९६०

वृन्दावन शोध संस्थान
रमणरेती, वृन्दावन

॥ श्रीहरिः ॥

शुभाशंसा

जयतु जयतु दिव्या व्रजाङ्गना । मङ्गलमयी मोददायिनी
मनोहारिणी च । नूनमियं श्रीकृष्णसात् कृतात्मनां सात्वतामनन्य-
मनसां सतां सदानन्दकारिणी रमारमण—मनोमोदकरा करामल-
कवदवबोधरसजुषां तत्राप्यानन्दसिंहासनलब्धदीक्षात्मानन्दास्वादिनां
परमाह्लाददायिनी परा वाणी ।

जनतापापनोदनिपुणा प्राची सरस्वती प्राचेतसामचेतसा
मत्यन्तसुचेतसां चेतस्तोषकरा सुधातिशायिनी वसुधावाहिनी प्रेमरस-
सुधा । कामतापसन्तप्तमनसामनुरागपूर्वकमनुपान्नं कुर्वतामनुपद-
मनुक्षणमत्यन्तशान्तिकरा मेकलकन्या ।

सर्वजनमनोगतमनोजवमनसिजनिवारणतत्परापराऽभृत्यस्यन्दिनी
भगवती हंसनन्दिनी सततमवगाहनेन वा श्रद्धा पुरस्सरमेकाच
मनेन । सज्जनमहज्जन विमलविरागरत मनोविनोदकरापि मनोमोह
विधायिनी भगवती श्रीविश्वमोहनी महाब्धिमथनोत्थितश्रमकलहव्रता
श्रीकृष्णरता परा देवी ।

त्रयी त्रयीरहस्यविदामपि वागविषया तथापि प्रेमासक्ति
व्यसनेति दशात्रयी विषा विषम विषहरा हरावार्त्तिकरा हरिप्रिया
श्रीस्वामिनी स्नेहाभा सा ।

विजयतेतरां व्रजाङ्गना या किल स्वसम्बन्धोऽनिर्वचनीय
द्विदलात्मका लौकिकरसराज हृदयाह्लादिनी रासेश्वरी स्नेहरस-
परिवेषणरता नानालङ्कारगुणरीतिप्रभृति दिव्य गुणगुरम्फिता तथापि
लक्षणा स्पर्शरहिता व्यञ्जना व्यधितानुरागरञ्जिताऽपि गीता लावण्य
लालित्यविलसिता ललनाऽभिनवा निभाऽभीक्षणशः प्रतिपदमुल्लासदान-

निपुणा समुच्छ्वलितललिताललित विरहरसभरितान्तः संयोगा-
नन्दाऽभिस्यन्दितार्थगम्भीरकोगलातिपेशल सरलरसाल प्रियाल
मधुरपदावली कमनीयाऽभिरमणीया विनेयाऽनुनयनेया दिवानिशं गेया
समुपादेया कत्रिवरवरणीया पद्मजाङ्गपद्मज महर्षिकर्दम श्रीमदज
तनुज मनुराज मध्यमतनुजा जातायाः श्रद्धायाः सूनू तथ्यानुजवाचस्पते
रतिवर्द्धिनी मतिमोहिनी प्रज्ञाप्रहर्षिणी सहृदयहृदयहृद्या प्रज्ञासम्पन्न
प्रपन्न प्रज्ञवरवरणीया सितासुधामाधुर्यातिशायिनी शेषशायि
कलानिधि रसेशपदपङ्कज प्रेमपयोधिसङ्गमातिवेगवती भगवती
कवितासरिता प्रवाहिता श्रीमद्राधारमणचरणाब्जचञ्चरीकैः कविवरै
प्रेमैकस्वरूपैरार्यपुरुषैः॥ दैन्यानुरागरञ्जितचित्तैर्भाववित्तैर्भाव-
वित्तमैः सत्तमैः श्रीमद्भिः गौरकृष्णगोस्वामिभिः । किं वक्ष्ये-
मेघश्यामलश्याममनोहराखण्डप्रेमपयोदपूरितभूर्त्ति मधुत्सवविग्रहो-
द्धवदूतमाध्यमेन विरहिणी व्रजाङ्गनाऽभिधेन श्रीनन्दनन्दनहृदयं
नन्दव्रजं प्रेषयद्भिः श्रीगौरकृष्णकविमिर्विस्मारितो मेघदूतमहिमां
संस्मारितः पुनर्नवीकृतः श्रीराधाधरसुधास्वादनातुरव्रजरति
मधुपति रतिरससम्मुल्लसितश्रीशुकाचार्यवदनाम्बुजगीतभ्रमरगीतसंज्ञः
सन्देशः ।

किं किं न निहितं व्रजाङ्गना निबन्धे प्रवन्धे श्रीनन्दनन्दन मातु-
रातुरता वात्सल्यरसपातुमार्त्तता नन्दात्मजस्य-पश्यतां पदमिदम् । (५१)

‘नाहं माता तव तनमयोः सैव धात्री त्वधन्या’-कीदृशं कृष्णमातु-
र्यंशोदायाः दैन्यञ्च वात्सल्यम् । अवश्यमनुसन्धीयतामस्मिन् पद्ये
श्रीकृष्णस्य लौल्यं जननी वात्सल्यपानाय !

‘स्वाङ्के धृत्वा जननि ! मुखतः वीटिकोच्छिष्टशेषम्’ (४९)
कुब्जाकटाक्षं कुर्वत्याः किशोर्याः कटाक्षमिषेणाऽपरम्परादयितवरस्य
दयालुतैव गीता । प्रेम्णोऽयं सिद्धः पन्थाः ।

यद्युपर्यपरि प्रतिभाति न्यक्कारः, किन्तूरसि निहितो वागतोतः
स्नेहसत्कारसारासारः । श्रीयदुपतिपुरीतः श्रीव्रजराजराजधानी-
पर्यन्तपथिस्थितानां वास्तूनां मन्दिराणां वासं वारिजादिवर्णनं
कुर्वतां श्रीकृष्णाकृष्णानुरागिणां श्रीगौरकृष्णानां देशेषु देवेषु वस्तुषु
चासाधारणोऽनुरागः कवित्व-कौशल्यञ्च दृश्यते ।

दस

अलमधिकेन पल्लवितेन कश्चिदपि सुज्ञः रसज्ञः प्राज्ञोऽज्ञः
भक्तोऽनुरक्तो विरक्तोऽस्तावकः स्तावकः प्रस्तावको वा यदेनां करतलं
गृहीष्यति सः नितान्तं निरन्तरं निजीयस्वान्तस्तल एव स्थापयिष्य
तीतिनिवेदन् सनपि विरमति ।

श्रीकृष्णदासानुदासः कृष्णशङ्कर शास्त्री

संस्थापकः श्रीभागवत-विद्यापीठ

श्रीवल्लभनिधि, श्रीकृष्णनिधि, श्रीसमर्पण

श्रीवल्लभनिधिन्यास गुजरात



संशोध्य—अनुपानं — शान्तिकंरा पराश्रुत्यस्यन्दिनी

॥ श्रीराधारमणोजयति ॥

॥ श्रीगौरकृष्णशरणम् ॥

विजय निवेदन

जब वह अचिर परिचिता शारदीय चान्द्रमसी ज्योति-वलय-वलिता विभावरी अपनी पूर्णप्रभा-प्रकाश-पटली से कोटि-कोटि वन-मल्लिकाओं के पल्लवों की हरीतिमा को धवलायित करती हुई शनैः शनैः बढ़ती चली जा रही थी, साथ ही प्रस्फुटित पारिजात प्रसूनों की उद्दाम गन्ध से वह एकान्त कान्त वनप्रान्त आमोदित हो रहा था तभी सुदूर से समुत्थित मुरली के मृदु मधुर मादक स्वर उस निस्तब्ध रजनी के वातावरण को झंकृत करते हुये सुनाई दिये। अभी निशीथ के अवसान में विलम्ब था, तभी एक कालिन्दी स्नानार्थी साधक के वीणा विनिन्दित वाणी की स्वर लहरी

‘ऊधौ ! मोहि ब्रज विसरत नाहीं ।’

सुनाई दी। मेरा मन मुदित हो उठा तभी मन में एक सङ्कल्प की जाग्रति हुई क्यों न इस ‘गोपी-माधव-सन्देश’ का वर्तमान परिवेश में काव्यगत संस्कृतीकरण किया जाय ? यही था इस रचना की प्रेरणा का वास्तविक उत्स। मैंने इस काव्यगत रचना को प्राप्त प्रभु प्रसाद के रूप में आगे बढ़ाया। न जाने कहाँ से इसकी भनक मेरे परम स्नेहास्पद चार सम्प्रदाय के अध्यक्ष श्रीरामदास शास्त्रीजी को पड़ गई, उन्होंने साग्रह इसके कुछ अंशों को ‘चैतन्य-किरण’ के ‘उद्भव गोपी सम्वाद’ नामक विशेषाङ्क में प्रकाशित कर पूर्ण प्रकाशन का परामर्श दिया, यह अतीत की घटना आज भी मेरे हृदय में अङ्कित है। प्रस्तुत रचना में कुछ संस्कृत तथा हिन्दी के प्रख्याततम कवियों के भावांशों का श्लोकात्मक रूप में समायोजन—

बारह

सन्तों की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी वाणी ।

जानूँ उसका भेद भला मैं क्या अज्ञानी ? ॥

अनुसार हुआ है ।

आचार्य अनुभूति के अनुसार इन्द्र आदि वैयाकरण जिस शब्दवारिधि का पार न पा सके इस शब्द विषयक ज्ञान में मेरी नगण्य मति की क्या गति है ?

‘किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः’ ।

जब आचार्य श्रीद्विवेदीजी कवि कालिदास की कृतियों पर अनेक दोषों का समुद्रघाटन कर ‘कालिदास की निरंकुशता’ प्रदर्शित कर रहे हैं तब मुझ अज्ञान जन की रचना कैसे दोष मुक्त हो सकती है ? सच पूछा जाय मेरा यह प्रयास दोनों हाथों से चन्द्रमा को पकड़ना नहीं तो क्या है ?

साथ ही यह भी निवेदन है कि इसका हिन्दोरूपान्तर शब्दगत न होकर भावगतरूपेण किया गया है ।

छन्द शास्त्रगत नियमों में—आवश्यक होने पर—

छन्द रचना में दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व शब्द प्रयोग में कुछ हानि नहीं है किन्तु छन्द भङ्ग नहीं होना चाहिये तथा शब्द स्वभावगत गुरु होने पर उसे ह्रस्व भी किया जा सकता है इसमें किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं है; इस अनियमे नियम कारिणी परिभाषा’ की स्थानतः मान्यता, आलङ्कारिक आयोजनाओं में गुण-दोष निर्णयात्मक वैचारिकी की अभावता, आक्षरिक, शाब्दिक, विनियोग में विनियोजकों की कराघातजन्य कौशलता आदि अनेक विसंगतियाँ सम्भाव्य और संशोध्य है ।

मेरी समझ में उद्धव नाम भी सन्देहों के घेरे में हैं । वस्तुतः यह नामकरण मथुरा से श्रीकृष्ण द्वारा वृष्णिवंश-प्रशंसित प्रवर सचिव

❧ पुरःस्थितेन तेन स्याल्लघुताऽपि क्वचिद्गुरोः ॥१११०॥

अल्पव्ययेन सुन्दरि ! ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति ॥

वृत्त रत्नाकर १।११।

को स्वस्वरूपानुरूप सज्जित कर व्रजाङ्गनाओं की वियोग वेदना-सान्त्वनार्थ वृन्दावन भेजा गया था, उस समय सूर्य अस्तमित हो चुका था। घोर सन्ध्या सामने थी, स्यन्दन पर आरुढ़ उन श्रीकृष्णानुरूप प्रौढजन को देखकर गोपाङ्गनायें सन्देह में भर गई और उनके मन में श्रुतकर्मणा जाग उठी। यह तो हमारे प्राणपति स्वयं श्रीकृष्ण हैं जो हमें वियोग सागर से उठाने के लिये पधारे हैं। यह था व्रजाङ्गनाओं के द्वारा उद्धव नामकरण का रहस्य।

इसी कार्तिक की आरम्भिक वेला में विश्वविश्रुत वक्ता भागवत-भूषण श्रीकृष्णशङ्कर शास्त्रीजी ने मेरी इस रचना का अवलोकन कर जो आन्तरिक—शुभाशंसा परिव्यक्त की है वह मेरे जीवन की एक अमूल्य निधि है मैं उनकी इस अहैतुकी अनुकम्पा पर विनत हूँ।

इस काव्यमयी रचना के सज्जित, सुसम्बद्धित एवं समायोजित करने का श्रेय वास्तव में श्रीरङ्गलक्ष्मी विद्यालय के प्रवक्ता स्वर्णपदक प्राप्त व्याकरणाचार्य श्रीगिरिराज शास्त्रीजी को है उनके सम्प्राप्त सहज सरस इस स्नेह सहयोग का मैं सदैव आभारी रहा।

श्री डा० नरेशचन्द्र वंसल निदेशक 'श्रीवृन्दावन शोध संस्थान' का मुझे सर्वांशतः सरस स्नेह सदैव प्राप्त होता रहा है उसी के फल-स्वरूप उनके द्वारा व्यक्त 'प्राग् निवेदन' इस काव्य रचना की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है मैं इसके लिये उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर रहा हूँ।

प्राच्य दर्शन महाविद्यालय वृन्दावन के संस्कृत अध्यक्ष-प्रवक्ता व्याकरणाचार्य डा० श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी शास्त्री एम. ए. महोदय ने इस संरचना सम्बन्ध में अपना अमूल्य अभिमत व्यक्त कर मुझे अत्यन्त अनुग्रहीत किया है उनकी इस अनुपम अनुकम्पा के लिये भी मैं अनुग्रहीत हूँ।

सारग्राही कवि के कथानुसार सम्भव है कि मेरी यह काव्यगत रचना विशेषवित् विद्वज्जनों को रुचिकर न हो किन्तु मैं तो अपने मन

ॐ उत संशये, अयं ध्रुवः प्राणेश्वरः श्रीकृष्ण इति शब्दार्थः।

चौदह

में यह कामना कर रहा हूँ कि आगे आने वाले समय में निश्चय ही कोई मेरे समान-धर्मी व्यक्ति उत्पन्न होगा, जो मेरी इस संरचना का सादर अनुशीलन करेगा कारण—समय की कोई अवधि नहीं और न इस विपुल वसुन्धरा की कोई सीमा है।

इस रचना के प्रकाशन में श्रीचैतन्य-चेतना के उदीयमान उन्नायक मेरे पुत्रकल्प श्री अनिलकुमार गोस्वामी तथा डा० श्रीअशोककुमारगोस्वामी ने जो उत्साह प्रदर्शित किया है वह सर्वथा स्तुत्य और सराहनीय है।

अन्त में मैं स्वयं प्रकटित विग्रह श्रीराधारमण देव के श्रीचरणों में कोटिशः अभिवादन करता हुआ अपनी अशेष ज्ञात-अज्ञात त्रुटियों के लिये क्षमार्थी रहा।

विनयावनत—

आचार्य डा० गौरकृष्ण गोस्वामी शास्त्री

काव्य पुराण दर्शन तीर्थ

सेवा निर्वृत राजपत्रित-चिकित्साधिकारी

अभिनव-चैतन्य आयुर्वेदिक औषधालय

श्रीराधारमण मार्ग

श्रीधाम बुन्दावन-२६१ १२१

सांकेतिक ०५६६४

दूरभाष-८२-४०२

कार्तिकी राका० २०४७ वै.

॥ श्रीराधारमणोजयति ॥

ॐ श्रीगौरकृष्णप्रशरणम् ॐ

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[उद्धव गोपी सम्वाद]

श्रीकृष्ण-बलराम और गोपगणों को लेकर कंस द्वारा आयोजित यज्ञ देखने अक्रूर के साथ मथुरा प्रस्थानित होने वाले थे कि ब्रज-गोपियों ने श्रीकृष्ण को रोकना चाहा, रथ का पहिया पकड़ लिया, घोड़ों की रास थाम ली, रथ के सामने लेट कर जोरों से विलाप करने लगीं, श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया परसों आने की शपथ ली, अन्त में गोपियाँ उनकी बात मानकर रथ के सामने से हट गईं ।

अक्रूर तीव्रगति से रथ को मथुरा ले गये । वे एकटक रथ की उड़ती हुई धूल को देखती रहीं ।

इधर श्रीकृष्ण ने बलराम के साथ कुवलयपीड हाथी, चाणूर, मुष्टिक मल्लों का संहार कर अन्यायी कंस का वध किया, गोपों को

विरहिणी-त्रजाङ्गना

शीघ्र वृन्दावन आने का आश्वासन दे उन्हें विदा कर तथा अपने माता-पिता देवकी वसुदेव को कारागार से मुक्त कर योग्य सन्तान के कर्त्तव्य का पालन किया एवं उग्रसेन को शासक बनाकर राज्य के शासन सूत्र को अनुशासनात्मक रीति संचालन करने में सहायक बनकर उसे स्थिरता प्रदान की ।

कंस की कुब्जा नाम की एक विकलांग दासी थी जो नित्य-नियमित रूप से सुवासित चन्दन घिसकर उनकी सेवा करती थी । मथुरा प्रवेश के समय श्रीकृष्ण ने उससे चन्दन लेकर स्वर्य लगाया और गोपगणों को लगाने को दिया । कुब्जा भयभीत हो गई । श्रीकृष्ण ने कृपाकर उसका विकलांग दूर कर सुन्दर रूप प्रदान किया । कंस के निघ्न के पश्चात् श्रीकृष्ण उसके यहाँ गये । गोपियों ने यह सुना इसी बात को लेकर वे सदा श्रीकृष्ण को उपालम्भ देती रहीं ।

[१]

वर्हापीडः नवजलधरः कुन्दमन्दारहारः,
विद्युद्वासः सजलनयनः राजसिंहासनस्थः ।
वृन्दारण्यस्मरणविकलः वाष्पकण्ठः मुरारिः,
विद्वद्वन्धं परमदयितं ह्युद्धवं संजगाद ॥

सहसा एक दिन मथुरा में राजसिंहासन पर विराजित नव-घनश्याम मयूरपिच्छ-पीताम्बरधारी मुरारि को वृन्दावन का स्मरण हो आता है, उनकी आँखें आँसुओं से भर उठती हैं, गला रुंध जाता है, उस समय उनके परम प्रिय सखा उद्धव आ जाते हैं उनको देखकर उनकी हृदय वेदना सहस्र-गुणित हो उठती है वे उनका हाथ पकड़ कर कहने लगते हैं ॥१॥

[२]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[२]

शिष्यश्रेष्ठस्त्वमसि दयितः स्वर्गुरोः सत्कुलीनः,
 काव्यालापाकलनकुशलः कार्यकालानुकूलः ।
 तस्माद् गच्छ त्वरितमधुना वेदनासान्त्वनार्थं,
 वृन्दारण्यं जनकजननीगोपसीमन्तिनीनाम् ॥

प्रिय उद्धव ! तुम साक्षात् वृहस्पति के प्रधान और कुलीन शिष्य होने के कारण वाक्य रचना में कुशल तथा अनुकूल कार्यों के समाधान में श्रेष्ठतम व्यक्ति हो, अतः मेरी माँ, पिता, गोप तथा गोपाङ्गनाओं की मद्वियोगजनित वेदना के शमन के लिये शीघ्र वृन्दावन जाओ ॥२॥

[३]

प्रातःस्नानागतव्रजवधूवर्गपीनस्तनाङ्गा-
 नङ्गामन्दोन्मदमृगमदव्यक्तकाश्मीररागात् ।
 वक्रीभूतां तपनतनयां श्यामलां पूर्णकामां,
 दृष्ट्वा किञ्चित् क्षणमपि सखे ! गच्छ मार्गं यथेच्छम् ॥

उद्धव ! वृन्दावन जाते समय सबसे पहिले तुमको यमुना का दर्शन होगा, जो यमुना कभी प्रातः स्नानागत व्रजरमणीगणों के स्तनों में लिप्त मृगमद तथा केशर राग से रंजित रहती थीं वह आज टेढ़ी-मेढ़ी चालों से श्यामल रूप में दिखाई देगी, उसे कुछ क्षण देखकर अपनी इच्छानुसार आगे बढ़ना ॥३॥

[३]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[४]

विश्वोत्पत्तिस्थितिलयलसत् त्रित्वतत्त्वैकरूपं,
 चञ्चच्चन्द्रोज्ज्वलदलकलामौलिमालं विशालम् ।
 कालव्यालावलिबलयितं मुण्डमालं करालं,
 दृष्ट्वा भूतेश्वरव्रजपतिं गच्छ वृन्दावनान्तम् ॥

प्रिय सखे उद्धव ! समस्त विश्व की उत्पत्ति स्थिति लय के एकमात्रकर्ता, त्रिगुणात्मक स्वरूप, कालव्यालावलि तथा मुण्ड-मालाओं से विभूषित व्रजमण्डल के प्रधान अधिपति चन्द्रमौलि-भूतेश्वर का सर्वप्रथम दर्शन कर वृन्दावन की ओर बढ़ना ॥४॥

[५]

वालाकभामरुणवसनामष्टहस्तां सुकेशीं,
 नानारत्नोत्खचितकनकालंकृतिं कामपूराम् ।
 रासोल्लासात् प्रकटपरमानन्दपूर्णप्रयोगां,
 मायां विष्णोरतिशयवराञ्चाभिवन्द्य प्रयाहि ॥

उद्धव ! प्रातःकालीन सूर्य के समान कान्ति, अरुणवसना, अष्टभुजाधारिणी, रत्नाभरणों से अलंकृत, समस्त कामनाओं की पूर्ति तथा रासलीला की सर्वप्रथम भूमिका का निर्वह करने वाली, परमानन्दस्वरूपा मेरी प्रधानशक्ति योगमाया अर्थात् महा-विद्या का दर्शन कर आगे बढ़ना ॥५॥

[४]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[६]

भव्यं विष्णोः भवनविरलं कारुकोटिप्रकल्पं,
भोज्यस्थानं सरससुखदं यज्ञप्रासादपौरम् ।
वापीं पापीगददवहरां सर्वथा सन्निरीक्ष्य,
भ्रातः ! पृच्छन् व्रजपुरदिशं घोषवृद्धात् प्रयाहि ॥

उद्धव ! आगे बढ़ने पर अनेक शिल्पकलाओं से युक्त भगवान् विष्णु का सुन्दर विरल मन्दिर, यज्ञपत्नियों द्वारा श्रीकृष्ण-बलराम को समर्पित भोज्य स्थान (भतरोड), पाप-ताप को दूर करने वाली विशाल वावड़ियों का सर्वथा निरीक्षण कर बड़े-बड़े वृद्ध गोपगणों से वृन्दावन का मार्ग पूछते हुये आगे बढ़ना ॥६॥

[७]

श्वेतस्तूपोन्नतनवनवाखण्डखण्डप्रकल्प-

कल्पानलपोज्ज्वलधवलितं चारुचन्द्रप्रकाशम् ।
प्रासादाग्र्यं भुवनविदितं लोकलावण्यलीलं,
गच्छन् ग्रामं स्पृशति च तृणं स्थानतः सम्प्रयाहि ॥

उद्धव ! चन्द्रमा की पूर्ण प्रभा के समान प्रभासित, श्वेत-प्रस्तरों से निर्मित, अखण्ड नौखण्डों से प्रकल्पित, भुवन प्रसिद्ध लोक-लावण्य श्रेष्ठ प्रासाद-स्वरूप लीलाधाम का 'ग्राम की ओर जाते समय तृणों का स्पर्श करता है' इस न्याय का अनुसरण करते हुये तुम आगे बढ़ना ॥७॥

[५]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[८]

स्थानं स्थानं स्थलसरसिजामन्दमन्दारगन्धं,
कासारस्थाम्बुजपरिमलालम्बरोलम्बमालम् ।
दीव्यद्विष्यौषधितरुलतागुल्मशस्यप्रसारं,
वृन्दारण्यं विशद - विमलं वन्दनीयं चकास्ति ॥

उद्धव ! स्थान-स्थान पर विविध वर्णों के गुलाब तथा हार-
सिगार की सुगन्धि से जो आमोदित एवं स्वच्छ सरोवरों में
विकसित कमल पराग गन्ध मत्त मधुकर श्रेणियों से शंकृत हो
रहा है और दिव्य औषधि तथा तृण तरु लता की हरीतिमा से
सदा आच्छादित है । वह वृन्दारकवृन्दवन्दित परमपावन मनभावन
सरस वन्दनीय वृन्दावन—

‘घन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिः नृत्यति यत्र च ।’

जहाँ भक्ति अपने अशक्त ज्ञान वैराग्य पुत्रों के साथ नाचती
है । जहाँ वैदिक ऋचायें ‘तां वा वास्तुन्युष्मसि’ बड़े सींग वाली
गायों की उपस्थिति की सूचना देती हैं ।

जिसे कविकुलकमल कालिदास ‘वह्णेव स्फुरितरचिना
गोपवेषस्य विष्णोः’ मोरमुकुटधारी कृष्ण कन्हैया की क्रीड़ास्थली को—

‘वृन्दावने चैत्ररथादनुने’

नन्दन कानन से भी श्रेष्ठ बतला रहा है । जिसे श्रीहर्ष हर्ष
के साथ—

‘वृन्दावने वनविहारकुतूहलानि’

वन विहार का लीला कानन बतला रहा है, आज भी
संसार में अपनी नैसर्गिक सौन्दर्य सुषमा के कारण प्रकाशित हो
रहा है ॥८॥

[९]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[६]

चञ्चच्चामीकरकृतिक्रतोः कीर्तिकेतुप्रसक्तं,
वायोः सूनोःस्थलमभिनवं गोकुलञ्चाभिवाद्य ।
गच्छन्तं तं गुरुकुलपथं द्रक्ष्यसि व्यक्तरूपं,
रुद्राजश्रीसनकवलयालंकृतस्थानसौधम् ॥

उद्धव ! यज्ञ के स्वर्णिम कलशों में बंधीहुई पताकाओं से युक्त श्रीराम के परम आराधक श्रीहनुमानजी का मन्दिर, सहस्रों गायों से युक्त गौशाला और गुरुकुल मार्ग होते हुये तुम्हें आगे जाने पर चार सम्प्रदाय का विशाल आश्रम दिखाई देगा ॥६॥

[१०]

रक्तालक्तप्रसृमरपरप्रस्तरप्रान्तपारं,
नानाकल्पाकलितकलनानल्पसङ्कल्पशिल्पम् ।
गोविन्दाख्यं व्रजसुरपतेः मन्दिरं सन्निरीक्ष्य,
स्मारं स्मारं रुचिरचरितं याहि प्राप्त-प्रसादः ॥

उद्धव ! आगे बढ़ने पर तुम्हें लाल पत्थरों से निर्मित, विविध शिल्पकलाओं से युक्त व्रज के अधिपति श्रीगोविन्ददेव का विशाल मन्दिर देखने को प्राप्त होगा उसे प्राप्त प्रसाद रूप में देखते एवं बार-बार रुचिर चरित्रों का स्मरण करते हुये आगे बढ़ना ॥१०॥

[७]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[११]

मिश्रस्थानश्रमिकपटलीनिर्मितानल्पकल्प-

गोपीनाथापरपरपिरामीडशिल्पप्रकल्पम् ।

उच्चैः स्वर्णविलितशिखरं श्रीपतेःमोहनस्य,
देवागारं भुवनविदितं वोक्षमाणः प्रयाहि ॥

उद्धव ! मानों मिश्र-देशीय श्रमिकों द्वारा अत्यन्त परिश्रम से निर्मित पिरामिड शिल्पशैली के समान शोभायमान सर्वश्रेष्ठ श्रीगोपीनाथदेव का मन्दिर तथा उच्चशिखर पर स्वर्ण कलश युक्त सुप्रसिद्ध श्रीमदनमोहनदेव के विशाल देवागार का दर्शन कर आगे बढ़ना ॥११॥

[१२]

प्रेमानन्दोद्भवप्रकटितप्रीतिपूर्णप्रभावं,

साक्षाल्लीलावलिवलयितं भट्टगोपालभाग्यम् ।

श्रीमद्राधारमणमजितं कृष्णचैतन्यरूपं,

नीलाम्भोजद्युतिसुवलयितं द्रक्ष्यसि स्वेष्टमूर्तिम् ॥

उद्धव ! इसके आगे जाकर तुम श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी की भावभक्ति से वशीकृत हो शालग्रामशिलाविर्भूत स्वयं प्रकटित श्रीगौरचन्द्र के साक्षात् विग्रह-स्वरूप नीलकमलदलश्याम श्रीराधारमणदेव के दर्शन प्राप्त करोगे ॥१२॥

[८]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[१३]

रासक्रोडास्थलवटतरोस्तीरसंस्थप्रशस्तं,
गोपीयूथोत्खनितममलं मिष्टतोयं प्रकृष्टम् ।
पुण्यं तापत्रयहरपरं वेणुकूपं प्रसिद्धं,
दृष्ट्वा भक्त्या व्रज प्रियसखे ! माधवीमञ्जुकुंजम् ॥

उद्धव ! रासस्थली के अत्यन्त निकट विशाल वट वृक्ष के समीप सर्वश्रेष्ठ तापत्रय नाशक निर्मल मधुर जलयुक्त गोपाङ्गनाओं द्वारा उत्खनित सुप्रसिद्ध 'वेणु-कूप' को देखकर उसे नमस्कार करते हुये 'माधवी-कुञ्ज' की ओर जाना ॥१३॥

[१४]

वंकं नीलोत्पलदलरुचि मञ्जुलं कुञ्जनाथं,
श्रीराधावल्लभव्रजनिधिं श्यामदामोदराख्यम् ।
श्वेताद्वैतोज्ज्वलशशिशिखास्तम्भवक्रप्रकारं,
स्वर्णस्तम्भं मुदितमनसा सन्निरीक्ष्य प्रयाहि ॥

सखे ! श्रीस्वामी हरिदासजी के सेव्य श्रीबांकेबिहारी, श्रीहित हरिवंश गोस्वामी के आराध्य व्रजनिधि श्रीराधावल्लभ, श्रीश्याम-सुन्दर, श्रीराधादामोदर, श्रीराधाविनोद विग्रहों के दर्शन कर श्वेत संगमरमर से निर्मित अद्वितीय चन्द्रमा की किरणों के समान शोभित टेढ़े खम्भों का शाहजी मन्दिर तथा श्रीरङ्ग मन्दिर का विशाल स्वर्ण स्तम्भ दर्शन कर आगे बढ़ना ॥१४॥

[१५]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[१५]

श्रीगौराङ्गस्मरणजनितानन्दभावोद्भवानां,
 नानादेशागतमतिमतां भारतीभारतानाम् ।
 दृष्ट्वा तेषां भजनरचनां नातिशङ्का विधेया,
 एतद्योगः क्वचिदपि भवेत् पूर्वसंस्कारयोगात् ॥

उद्धव ! जो निरन्तर श्रीगौराङ्गदेव के स्मरण जनित आनन्द से अनुभावित हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृति से प्रभावित हो वृन्दावन का आश्रय लिया है उन अनेक देशों से समागत श्रेष्ठ विदेशीय भागवतजनों की भजन रचना एवं वेषभूषा देखकर मन में किसी प्रकार की शङ्का न करना, ऐसा योग पूर्व संस्कार के ही संयोग से बनता है ॥१५॥

[१६]

रासोल्लासात्कलितललितोल्लासरूपस्वरूपं,
 ब्रह्मेन्द्रार्द्यैःस्तुतमविरतं भानुजा - तीरसंस्थम् ।
 वृन्दारण्यस्थितनवनिधि गोपगोपीश्वराख्यं,
 घंटाघोषैः कनककुसुमैरर्चयन् सम्प्रयाहि ॥

उद्धव ! रास दर्शन के उल्लास से जिन्होंने सुन्दर सखी स्वरूप धारण किया है, जो यमुना किनारे स्थित होकर ब्रह्मादि देवगणों से सदा पूजित हो रहे हैं उन व्रज वृन्दावन की सर्वस्व निधि 'श्रीगोपीश्वर' महादेव का घंटा घोष एवं अर्क-धतूरो के पुष्पों से पूजन कर आगे बढ़ता ॥१६॥

[१०]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[१७]

स्वर्गस्थानस्थितसुरसरित्स्वर्णवर्णाम्बुजानां,

नालामालामलपरिमलास्वादपूर्णप्रकाशाः ।

लब्ध्वा रूपप्रकृतप्रकृतिं सिद्धिमन्नानुरूपां,

हंसाः मुक्ता-सरसि विमले जातरूपाश्चरन्ति ॥

उद्धव ! स्वर्ग की सुरसरिता में विकसित स्वर्ण-वर्णीय कमलों के नाल का पराग आस्वादन करने के कारण जिनका 'जिस प्रकार का अन्न उसी प्रकार का तन' सिद्धान्तानुसार वर्ण सुनहरी हो गया है ऐसे हंस (परम हंस) वृन्दावन के विमल मुक्तासर (मोतीझील) में विचरण करते हैं ॥१७॥

[१८]

केशीतीर्थस्थितबहुशतान् भिक्षुकान् व्याधिग्रस्तान्,

पापाचारान् कलहनिरतान् कष्टसृष्टान् शिष्टान् ।

दृष्ट्वोद्विग्नान् मनसि च सखे ! खिन्नतामाविधेया,

लोके लोकाः विधिविलिखितां भोग्यतामाप्नुवन्ति ॥

उद्धव ! केशीतीर्थ पर उपस्थित सहस्रों विविध व्याधि ग्रस्त, पापाचरण करने वाले, कष्टकारक कुष्ठ रोग से ग्रस्त, दिन रात कलह में रत, उद्विग्न, अशिष्ट भिक्षुकों को देखकर अपने मन में तनिक भी खिन्नता न लाना कारण मानव संसार में अपने विधि विलिखित कर्मानुसार भोग्यता को प्राप्त करता है ॥१८॥

[१९]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[१६]

शाखासन्नां परिहृतरवां त्यक्तसर्वान्नपानां,
 दीनां हीनां मधुपुरदिशं प्रेक्षयन्तीं प्रकामम् ।
 कृष्णां कृष्ण स्मरणविकलां कक्खटीमश्रुपूर्णां,
 वृन्दारण्यस्थल - पथिगतां मर्कटीं द्रक्ष्यसि त्वम् ॥

उद्धव ! वृन्दावन के मार्ग पर वृक्ष की ऊंची डाली पर बैठी, न कुछ बोलती हुई, मेरे वियोग में जिसने समस्त अन्न पान छोड़ दिया है, जो दीन हीन भाव से मथुरा की ओर देखती हुई, कृष्ण नाम सुनने से व्याकुल, जिसकी आँखों से अनवरत अश्रुपात हो रहा है ऐसी मेरी हितैषिणी 'कक्खटी' नाम की बन्दरिया को देखोगे ॥१६॥

[२०]

जीर्णाः शीर्णाः विरलविरलाः क्षीणनीराः करीराः,
 नष्टीभूताः गलितचलिताः पादपाः पीलुमुख्याः ।
 दृश्यन्तेऽत्र प्रकृतविकृताः हाधुना नामशेषाः,
 वृन्दारण्यस्थित - निधुवने सेव्य - सेवानिकुञ्जे ॥

उद्धव ! वृन्दावन के उन सुरम्य स्थान निधुवन एवं सेवाकुंज में जहाँ कभी सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता था वहाँ के आज कटीले करीर के वृक्ष वर्षा का जल न पाने से सूखते जा रहे हैं, जिसके पत्ते जीर्णशीर्ण होकर गिर चुके तथा अपने स्थानों को छोड़कर अलग-अलग दिखलाई दे रहे हैं । पीलु के वृक्ष भी गलकर अपना स्थान छोड़ गये हैं आज प्राकृतिक प्रकोप की मार से उनका नाममात्र ही शेष रह गया है ॥२०॥

[१२]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[२१]

गोष्ठस्थानस्थितगिरितटीश्रेष्ठकोष्ठालयेभ्यः,

प्रातः दध्नः मथनसमये गोपसीमन्तिनीनाम् ।
गायन्तीनां मधुरवचनैः बाललीलाः मदीयाः,
अद्यापीह व्यथयति च मामध्वनि द्राग् ध्वनिः सः ॥

उद्धव ! गोष्ठस्थानस्थित गिरितटी के उन श्रेष्ठ प्रकोष्ठों से उत्थित प्रातःकालीन दधिमथन के समय मृदु मधुर स्वरों से मेरी बाललीला गायनरत गोपाङ्गनाओं की मार्ग में सुनाई देने वाली ध्वनि आज भी मेरे हृदय को व्यथित कर रही है ॥२१॥

[२२]

तालोत्तालत्तपनतनयातीरवानीरकुञ्जान्,

लोकालोकोल्लसितललितोल्लासशैलप्रकल्पात् ।
कान्तैकान्ताकलितकलितान् केलिकञ्जान् कदम्बान्,
स्मृत्वा स्मृत्वा निरवधि सखे ! वेदनामाप्नुयामि ॥

सखे ! तुङ्गोत्तुङ्गतरङ्गा तपनतनया की वे वानीर कुञ्जों, निखिल लोकों को अपनी दिव्यौषधि प्रकाश से आलोकित करने वाली वे गिरि कन्दरायें, एकान्त कुञ्जों के वे कान्त क्रीडाकमल और कदम्ब जब मेरे स्मृति पथ को अपनी सौन्दर्य-मुषमा से उत्प्रेरित करते हैं तब मैं अपने मन में एक विशेष प्रकार की वेदना का अनुभव करता हूँ ॥२२॥

[१३]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[२३]

मन्दं मन्दं वहति नितरां सर्वथा सानुकूलः,

कुन्दामन्दोन्मददमनकोदामगन्धानुबन्धः ।

शैलश्रेणीचलजललवासारकासारसारः,

कुञ्जान्तस्थः व्यथयति च मां कुञ्जराख्यः समीरः ॥

उद्धव ! निरन्तर सर्वथा अनुकूल, कुन्द दमनक पुष्पों की गन्ध से सुरभित, शैलश्रेणियों में स्थित सरोवरों के जल शीकरों से सुशीतल, केलि कदम्ब कुञ्जों से मत्त गजेन्द्र के समान मन्द-मन्द आता हुआ उस समीर का जब मुझे स्मरण हो आता है तब मैं व्याकुल हो उठता हूँ ॥२३॥

[२४]

रक्तोष्णीषं

पुरटपटलं

हारिहीरावतंसं,

मुक्तामालं

ललिततिलकं

पीतकौशेयचैलम् ।

कूर्चशमश्रुध्रुवलवलयं

श्रातकौम्भप्रभाभं,

तातं

विद्धि

व्रजजनपतिं

नन्दमानन्दकन्दम् ॥

उद्धव ! सोने का पत्र लगी लाल पगड़ी, हीरों का सुन्दर मुकुट, मोतियों की मनोरम माला, और जो पीताम्बर धारण कर रहे हैं, जिनके उन्नत ललाट पर ललित तिलकों की रचना है, जिनकी बड़ी-बड़ी श्वेत घवल मूँछें और उठी हुई दाढ़ी है, वे ही गौरवर्ण व्रजराज आनन्दकन्द श्रीनन्द मेरे पिता हैं यह जानना ॥२४॥

[१४]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[२५]

गौरीं पीनां नलिननयनां नीलचैलामशीति-,
वर्षस्पर्शा कटितटलसत् किङ्किणीजालमालाम् ।
नासामुक्ताभरणवरणां रत्नकेयूरवन्धा-
मम्बां विद्धि व्रजवरवधूवर्गवन्धां यशोदाम् ॥

उद्धव ! जिनका शरीर स्थूल है, जो गौरवर्णा, कमल के समान विशाल नयना, नीलाम्बर धारिणी हैं, जिनके कटिप्रान्त में ककणित करधनी, नाक में मुक्ता की नथ, दोनों हाथों में रत्नों के बाजूबन्द सुशोभित हैं वे ही अस्सी वर्ष की अवस्था वाली मेरी मां व्रजेश्वरी श्रीयशोदा हैं यह जानना ॥२५॥

[२६]

सूक्ष्मां चित्राम्बरवरधरां पूर्णचन्द्राननाभां,
चञ्चच्चन्द्रां ककणितरसनां हारिहीराश्महाराम् ।
नम्रां नन्दालयप्रमुखतापन्नसम्पर्कसूत्रा-
मम्बां विद्धि प्रणव्रतधरां रोहिणीं मे द्वितीयाम् ॥

उद्धव ! नन्दालय जाने पर एक डुवली-पतली, रंग-बिरंगे वस्त्रों को धारण करने वाली, पूर्णचन्द्र के समान कान्ति वाली, जिनके मस्तक पर सुन्दर चन्द्रिका तथा कटि प्रदेश में करधनी, कण्ठ में हीरों का हार है, जो अत्यन्त नम्र स्वभाव वाली, नन्दालय के समस्त कार्यों की सञ्चालिका दृढपातिव्रतधारिणी, मेरी दूसरी अद्वितीय गुण सम्पन्ना मां श्रीरोहिणी हैं यह जानना ॥२६॥

[१५]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[२७]

स्वर्णाम्बोधिप्रकटपरमोत्कृष्ट - संजातरूपां,
 दीव्यद्विद्युत् - प्रकटपटलीभासमानप्रकाशास् ।
 तालोत्तालावलिदलप्रभां चम्पकोद्भासभासां,
 विद्धि ज्योत्स्नावलयवलितां राधिकां प्राणप्रेष्ठास् ॥

उद्धव ! तुम वृन्दावन में जाकर मेरी प्राण प्रियतमा श्रीमती राधिका को जब देखोगे—

क्या यह स्वर्ण समुद्र से प्रकटित कोई स्वर्णमयी प्रतिमा है ? अथवा विद्युत् का कोई स्वर्णिम समुज्ज्वल प्रकाश है ? अथवा यह बलित हरिताल बलों की पूर्ण पीतिमा हैं ? अथवा चम्पक पुष्पों की एकत्रित पीतलावण्यता है ? अथवा यह कोई पूर्ण ज्योत्स्ना का प्रभामण्डल है ? तब तुम एक महान् सन्देह संकट में पड़कर आश्चर्य भाव से सोचने लगोगे और तभी इसकी वास्तविकता जान पाओगे ॥२७॥

[२८]

चञ्चच्चन्द्रोज्ज्वलदलसच्चन्द्रिकां चारुचूडां,
 कर्णस्वर्णाभरणकिरणालोकलावण्यलक्ष्मीम् ।
 सर्वश्रेष्ठां चिकुरनिकरादूरसिन्दूरविन्दुं,
 दिव्यां वृन्दाविपिनमहिषीं विद्धि राधां मदीयाम् ॥

उद्धव ! जिनके मस्तक पर चन्द्र की समुज्ज्वल किरणों के समान सुशोभित चन्द्रिका और सुन्दर शिरोभूषण हैं, जिनके कानों के कुंडलों की आभा से प्रतिपल लावण्यता झलक रही है, जिनके केशों के मध्य की सिन्दूर रेखा सौभाग्य की सूचना दे रही है, ऐसी स्वर्णिम दिव्य कान्तिमय सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा श्रीवृन्दावन राज्य की एकमात्र साम्राज्ञी मेरी प्राणप्रियतमा श्रीराधिका हैं यह जानना ॥२८॥

[१६]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[२६]

नत्वा कृष्णं यदुकुलकलालंकृतिं कामपूरं,
दृष्ट्वा विष्णोः नयनसलिलासारधारानिपातम् ।
नीत्वादेशं प्रकृतिप्रकृतं नित्यलीलानिवेशं,
वृन्दारण्यं मुदितमनसा ह्युद्धवः संजगाम ॥

उद्धव यदुपति श्रीकृष्ण के श्रीचरणों को नमस्कार कर उनके नेत्रों से अविरल गिरती हुई आँसुओं की धारा को देख तथा उनके वास्तविक नित्य लीलात्मक आवेशों को लेकर अत्यन्त प्रसन्न मन से श्रीवृन्दावन धाम की ओर प्रस्थानित हुये ॥२६॥

[३०]

लीलालास्योल्लसितललनानीलशाटीस्वरूपां,
तीरश्रेणीतततरुतरत्तालमालानुलम्बासु
आभीरस्त्रीनयनसलिलासारधाराञ्जनाभां,
तुङ्गोत्तुङ्गां तपनतनयामक्षिलक्षीचकार ॥

लीला विलास से उल्लसित रमणी की विस्तृत नील साड़ी अथवा तटस्थित विस्तृत ताल तमाल की प्रतिविम्बित श्यामल छाया के समान अथवा ब्रजाङ्गनाओं के वियोग-जनित आँसुओं से धुले हुये काजल की कालिमा को अपने वक्षःस्थल में संजोती हुई— इन्द्रनीलमणि - स्वरूपा तरलिततरङ्गा श्रीयमुना के दर्शन उद्धव ने वृन्दावन में किये ॥३०॥

[१७]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[३१]

विद्युद्दामस्तनितमुदितां चित्रलेखां मयूरीं,
स्नेहस्निग्धां प्रियसहचरेणान्वितां नृत्यमग्नाम् ।
केकारावैरधिकृतवनप्रान्तमाकूजयस्तीं,
वर्हालम्बां मदनमथितां मृत्तिकाद्रौ ददर्श ॥

उद्धव ने वृन्दावन जाते हुये एक मिट्टी के टीले पर बिजली के बार-बार चमकने से आनन्दित, अपने सहचर मयूर के साथ स्नेह से पंखों को फैलाकर नाचती, समस्त वन प्रान्त की अपनी केका-काकली से शब्दायमान करती हुई, कामपीड़िता चित्रलेखा मयूरी को देखा ॥३१॥

[३२]

कश्चित् कान्ताविरहविधुरः स्निग्धकण्ठः मयूरः,
कुञ्जान्तस्थस्थलकमलिनीनीलशाखानिषण्णः ।
केकारावैश्चकितचकितः साश्रुधाराधरास्यः,
क्रूराक्रूरकृतव्रजदशां भावयन् संहरोद ॥

वृन्दावन - पथ पर जाते हुये उद्धव ने अपनी सहचरी के वियोग से व्यथित, 'माधवी मञ्जुकुञ्ज' के द्वार की नील गुलाब की शाखा पर बैठा हुआ, कभी-कभी अन्य मयूर - मयूरियों की केका-काकली को सुनकर बार-बार चकित एवं क्रूर-अक्रूर द्वारा की गई व्रज की दशा को विचार कर आँखों से आँसुओं को बहाता हुआ श्रीकृष्ण के प्रिय स्निग्धकण्ठ मयूर को बहुत जोरों से रोते हुये देखा ॥३२॥

[३८]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[३३]

पूर्णप्रौढं सजलजलदश्यामलं स्यन्दनस्थं,
 विद्युद्वासः नलिननयनं कृष्णरूपानुरूपम् ।
 वर्हापीडं सरसिजस्रजं रत्नकेयूरबन्धं,
 अस्तं यातेऽहिमवरकरे तुङ्गविद्या ददर्श ॥

सन्ध्या के प्रारम्भ में तुङ्गविद्या नाम की गोपिका ने रथ पर बैठे हुये, मोरमुकुट, पीताम्बर, कमलमाल एवं दोनों हाथों में रत्नों के ब्राजुबन्द धारण करने वाले सर्वथा श्रीकृष्ण के अनुरूप नवीन घनश्यामल, कमलनयन, पूर्ण किशोर एक युवक को देखा ॥३३॥

[३४]

कोऽयं कस्य प्रतिकृतिरयं ह्यागतः किं मुकुन्दः ?,
 क्रूराक्रूरः पुनरपि व्रजे स्वामिनः प्रीणनार्थम् ।
 प्राणान्तेतुं नवव्रजवधूनाञ्च प्रत्यागतः वै,
 पौनःपुन्यं चकितचकिताः गोपिकाः सम्बदन्ति ॥

सखि ! यह रथ पर बैठे हुये कौन हैं ? यह तो श्यामसुन्दर के समान दिखाई देते हैं—वही मोरमुकुट, पीताम्बर, वनमाला धारण किये हुये हैं, उन्हीं की अनुहार है । नहीं सखि ! यह प्राणनाथ श्यामसुन्दर नहीं हैं, यह तो उनका स्वरूप धारण कर वही क्रूर-अक्रूर अपने स्वामी कंस की आत्मा की शान्ति के लिये निश्चय ही हम गोपियों के प्राणों की बलि लेने आया है । व्रजगोपियाँ चकित होकर परस्पर यह बात कह रही हैं ॥३४॥

[१६]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[३५]

कृष्णप्रेष्यः तपनतनयाभ्रातृलोकप्रकारं,
 नष्टाचारं ब्रजनवरसाशोकसञ्चारचारम् ।
 सारासारं विगतपरमानन्दसंसारसारं,
 नन्दागारं विपिनवनिताङ्गाररूपं ददर्श ॥

श्रीकृष्ण के विशेष सन्देशवाहक रूप में प्रेषित उद्धव ने सर्व-प्रथम वृन्दावन के उस 'नन्दभवन' को यमपुरी के समान भयङ्कर, जहाँ की सम्पूर्ण आचार संहितायें नष्ट हो चुकी हैं, जिसका कण-कण शोक सागर में डूबा हुआ है, जहाँ की निरस्य आनन्द परम्परायें समाप्त हो चली हैं, उसे निरन्तर वियोग की अग्नि में जलते हुये अंगारों के रूप में देखा ॥३५॥

[३६]

सन्ध्यास्नानं भजनमशनं चिन्तनं ब्रह्मराशेः,
 सर्वानेतां विधिविलिखितान् लोकदृष्ट्या समाप्य ।
 आभीराणां वचनरचनाचातुरीभावमुग्धः,
 प्रासादान्तः पुरपरिसरे चोद्धवः निद्रितोऽभूत् ॥

सन्ध्या स्नान, भजन भोजन के पश्चात् ब्रह्म के शुद्ध सत्त्व-स्वरूप ध्यान राशि की समस्त विधियों का लौकिक दृष्टि से समापन कर, गोपों की वचन रचना चातुरी से भाव विमुग्ध हो उद्धव ने नन्द महाराज के उस अन्तःपुर प्रासाद-जहाँ कभी श्रीकृष्ण बलराम शयन करते थे—में शयन की ॥३६॥

[३७]

विरहिणी-ब्रजाङ्गना

[३७]

यामा नीलोत्पलदलनिभा मेघमालाविलासा,
चौराचाराचरणचरणा हिल्लकारावभावा ।
कालव्यालावलिपरिवृता घोररूपान्धकारा,
निस्तब्धा सा तरलिततमी चोद्धवेन व्यतीता ॥

नील कमलदल एवं घनघोर घटा के समान काली, चोरों की आचरण क्रिया में सर्वथा सहायक, हिल्लक जीवों के डरावने शब्दों से भरी हुई, काल सर्प के समान 'घोर अन्धकारमयी उस निस्तब्ध रात्रि को उद्धव ने अर्द्धजाग्रत अवस्था में व्यतीत किया ॥३७॥

[३८]

दूरीभूताः दिनकरप्रगे तारकाणां समूहाः,
व्यक्तीभूताः द्विजरवसुधास्यन्दिनः वाग्विलासाः ।
गन्धीभूताः कुसुमकलिकाप्रस्फुटन्मन्दहासाः,
श्रुत्वा वेंतालिकश्रुतितति ह्युद्धवो हातनिद्रः ॥

'सूर्य के उदय के पूर्व ताराओं का समूह दूर हो चला है, नाना प्रकार के पक्षियों का मधुर कलरव आकाश को शब्दायमान कर रहा है, कुसुम कलिकाओं के एक साथ चटकने से दिग्दिगन्त सौरभ से भर उठा है' वेंतालिकों को इस गीति बेदगधी को सुनकर उद्धव जाग उठे ॥३८॥

[३९]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[३६]

रम्यं वीक्ष्य प्रकृतमधुरं शब्दबन्धं निशम्य,
पर्युत्कण्ठीभवति सुखितो जीवलोको भवे यत् ।
तस्मात् सत्यं स्मरति मनसा नूनमज्ञातपूर्वं,
भावस्थैर्यं हृदयवलयाम्यन्तरस्नेहगन्धः ॥

उद्धव सहसा मन में विचारने लगे—जब संसार में सुन्दर वस्तुओं को देख और वास्तविक मधुर शब्दों को सुनकर जीव के मन में एक प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है तब यह निश्चय प्रतीत होता है कि कोई ऐसी अचिन्त्य शक्ति अवश्य है जो दो हृदयों में भावों की स्थिरता को रखते हुये एक अनुपम स्नेह परस्परा का सञ्चार करती है । वही सत्य अनुभूति में वृन्दावन की नैसर्गिक सुषमा को देख अपने मन में कर रहा हूँ ॥३६॥

[४०]

प्रातः नत्वा व्रजपुरपतिं रोहिणीं श्रीयशोदां,
गोपान् शुष्यद्विकलवदनानुद्धवस्तानवोचत् ।
शीघ्रं वृन्दाविपिनवसतावागमिष्यामि नूनं,
सन्देशोऽयं यदुकुलपतेरित्थमित्थं त्वदर्थम् ॥

उद्धव ने प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम श्रीव्रजराज नन्द महाराज, माँ श्रीयशोदा और रोहिणी को नमस्कार कर, जिनका मुख श्रीकृष्ण वियोग से सूख रहा है उन व्रजवासी गोपों से 'मैं निश्चय ही शीघ्र श्रीवृन्दावन आऊंगा' यदुकुलपति श्रीकृष्ण ने आपके लिये यह सन्देश भेजा है ॥४०॥

[३३]

[४१]

अन्धीभूतां श्रवणविधुरां गात्रसंजातकम्पां,
कण्ठप्राणां शिथिलरसनां साश्रुपूर्णप्रवाहाम् ।
कृष्णा कृष्ण स्मरणविकलां दारुणोन्मादग्रस्तां,
वृन्दारण्यक्षितिविलुठितां तां यशोदां ददर्श ॥

जिनकी नेत्रों की ज्योति रोते - रोते नष्ट हो गई है, कृष्ण वियोग में जो कानों से सुन नहीं पा रही है, जिनका सम्पूर्ण शरीर कम्पायमान है, प्राण जिनके कण्ठ में आ चुके हैं, वाणी के स्वर रुद्ध हैं, जिनके नेत्रों से अविरल आँसुओं की धारा बह रही है, श्रीकृष्ण के नाम स्मरण से जो विकल हो रही है उन दारुण उन्मादिनी के रूप में पृथ्वी पर पड़ी हुई धूलि से सनी माँ यशोदा को उद्धव ने देखा ॥४१॥

[४२]

दुःखोद्विग्ना ज्वरितजरती कम्पमाना प्रकामं,
हा हा रावैः गगनमवनीं क्षोभयन्ती यशोदा ।
द्वारि द्वारि भ्रमति विशति स्नेहतः पूच्छतीति
दृष्टः क्वापि प्रियव्रजनिधिः माधवः किं भवद्भिः ? ॥

उद्धव ने श्रीकृष्ण वियोग में दुःखित और उद्विग्न ज्वर और वृद्धावस्था से काँपती हुई हा कृष्ण ! हा कन्हैया ! की बार-बार पुकार से आकाश और पृथ्वी को कंपाती हुई, स्नेह बन्धन से बंधी हुई माँ श्रीयशोदा वृन्दावन के घर-घर, द्वार-द्वार पर घूमती हैं, भीतर जाती हैं और सबों से पूँछती हैं कि भैया ! तुमने मेरे व्रजनिधि माधव को कहीं देखा है ? जो मुझसे बिछड़ गया है—कहते हुए यशोदा को देखा ॥४२॥

[२३]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[४३]

सहसा मां यशोदा कह उठती हैं—

रे पान्थ ! क्व व्रजसि ? मथुरां राजधानीं प्रकामं,
ज्ञातं कृष्णः वसति बहुशः कंसवंशप्रकोष्ठे ।
दृष्ट्या दृष्टः कथय सकलां मातुस्तस्यैवावार्तां,
देयं तस्मै सवलहरये ह्यभिरिहैयङ्गवीनम् ॥

अरे पथिक ! तुम कहाँ जा रहे हो ? माँ ! मैं सीधा मथुरा जा रहा हूँ, मैंने सुना है कि मेरा कन्हैया कंस के महलों में रहता है यदि तुम्हें वह भाग्य से कहीं दिखलाई दे तब उससे कहना तेरी माँ तेरे बिना बहुत दुःख पा रही है । मैंने कृष्ण बलराम को देने के लिये ताजा माखन रखा है उसे लेते जाओ ॥४३॥

[४४]

किञ्चिद्वैयं मनसि दधतां खिन्नतामाविधेया,
क्रोडं शीघ्रं जननि ! शृणु ते चागमिष्यामि नूनम् ।
एकं दुःखं मनसि सततं नात्र केचिद्वदन्ति,
देवं त्यक्त्वा पदमविरतं बालकृष्णं सतृष्णम् ।

उद्धव कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने आपको कहने के लिये यह कहा है—माँ तनिक चित्त में धैर्य धारण करो ! दुःख मत पाओ । मैं शीघ्र ही तुम्हारी गोद में बैठने को आऊंगा । यहाँ मुझे सब सुख होने पर भी एक बहुत बड़ा दुःख है कि यहाँ के निवासी मुझे प्रेम से बालकृष्ण कह कर नहीं पुकारते । सदा-सर्वदा मुझे महाराज के नाम से सादर सम्बोधन करते हैं ॥४४॥

[२४]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[४५]

मातः ! कष्टं ! व्रजसहचराश्चात्र केचिन्न सन्ति,
लोकाः प्रायोऽचिरपरिचिताः भावनामाश्रयन्ते ।
तस्माद्ब्रूहि प्रियनिजजनान् विस्मृतस्तः कथं नु,
कृष्णः सोऽयं स्मरति सततं क्रूरता मा विधेया ॥

उद्धव कहते हैं—श्रीकृष्ण ने आपसे यह कहा है कि—माँ ! यह अत्यन्त कष्ट की बात है कि यहाँ मेरे कोई भी निजी मित्र नहीं हैं, न यहाँ के मनुष्यों से मेरा अभी तक पूर्ण परिचय ही हुआ है, वे बहुत भावुक हैं । अतः मेरे प्रियजनों से कहना कि वे मुझे क्यों भूल गये ? तुम्हारा यह कहैया तुम्हें सदा स्मरण करता रहता है तुम लोगों ने ऐसी कठोरता क्यों धारण कर ली ? जो एक बार मेरे पास आये भी नहीं ॥४५॥

[४६]

मातः ! सोऽहं तव प्रियसुतः चञ्चलः बालकृष्णः,
तैलाभ्यङ्गस्नपनविधिना लालितः पालितः यः ।
मह्यं केनापि च नियमितः प्रातराशः न दत्तः,
क्षुत् क्षामत्वात् मम प्रतिदिनं शीर्यते देह एषः ॥

उद्धव कहते हैं श्रीकृष्ण ने आपके लिये यह कहा है—माँ ! मैं तेरा वही लाड़ला नटखट कहैया हूँ जिसे तुमने तेल, उवटन तथा स्नान के द्वारा इतना बड़ा किया है । माँ ! यही एक बड़ा दुःख है कि यहाँ किसी ने मुझे नियम से कलेवा नहीं कराया, जिससे क्षुधा से पीड़ित होने के कारण मैं दिन प्रति दिन सूखता जा रहा हूँ ॥४६॥

[२५]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[४७]

नीतं केनापि न सम कृते हन्त ! हैयङ्गवीनं,
 एलाद्राक्षाघृतमधुसितामोदकं मोदनार्थम् ।
 श्यामादुग्धं घनसरयुतं विन्दुमात्रं न पीतं,
 कस्मान्मातः ! कठिनहृदया मत्कृते हा ! वद त्वम् ॥

माँ ! श्रीकृष्ण ने तुम्हारे लिये यह कहा है कि— आज तक मुझे तनिक भी माखन चाखने को नहीं मिला और न नित्य की भाँति मुझे सुगन्धित लड्डू ही खाने को मिले । श्यामा गाय का बूंद भर दूध भी मुझे पीने को नहीं मिला ? मथुरा भला कितनी दूर है जो तुम इन्हें भेज न सकीं ? माँ ! तुम ही बतलाओ तुमने मेरे लिये इतना कठोर हृदय क्यों कर लिया ? पुत्र तो सदा अपराधी होता ही आया है, पर माता कभी स्नेह से शून्य नहीं होती ॥४७॥

[४८]

एका भीतिः जननि ! हृदि मे मामकान् जानु राधा,
 क्रीडालम्बान् सदनपिहितान् चोरयित्वा नयेन्न ।
 तस्मात्तस्याः व्रजपतिगृहे वर्जनीयः प्रवेशः,
 इत्यास्ते मे तव चरणयोः साग्रहश्चानुरोधः ॥

उद्धव कहते हैं—श्रीकृष्ण ने यह कहा है कि माँ ! मुझे यहाँ एक ही डर दिखलाई दे रहा है कि कहीं वह वृषभानुदुलारी राधा मेरे छिपाये हुये खिलौनों को कभी चुराकर न ले जाय । अतः अपने घर में उसका आना-जाना बन्द कर दो, यही आपके श्रीचरणों में मेरा बार-बार निवेदन है ॥४८॥

[४९]

स्वाङ्के धृत्वा जननि ! मुखतः वीटिकोच्छिष्टशेषं,
 दत्तं तावद्विवृतवदने यद्भवत्या पुरस्तात् ।
 वेणीबन्धं रुचिरतिलकं कज्जलं दृष्टिविन्दुं,
 स्मृत्वा तावत्त्वदनुचरितं वेदनां संलभे हा ! ॥

उद्धव श्रीयशोदा से कहने लगे—

माँ यशोदा ! श्रीकृष्ण ने आपको स्मरण दिलाने के लिये मुझसे कहा है—माँ ! उस दिन की बात मैं आज भी भुला नहीं पाया हूँ जब तुम पान खाकर द्वार पर बैठी थीं तब मैंने बाहिर से आकर मुझे भी पान देने को कहा । तुम दौड़ी हुई पान लेने जाने लगीं तब मैंने रोककर कहा माँ ! मैं यह पान नहीं, अपने मुख का पान मेरे मुख में दो, तुमने बहुत मना किया पर मैंने तो हठ ठान लिया, लूंगा तो मुख का ही पान लूंगा । तुमने मुझे गोद में बैठाकर अपने मुख के पान की उगलन मेरे मुख में डाल दी, मैं प्रलम्बित हो उठा । मुझे यह भी स्मरण है कि जब तुम अपनी गोद में बैठाकर मेरी वेणी बाँधती थीं, सुन्दर तिलक लगाती थीं, आँखों में काजल लगाकर फूँक मारती थीं, नजर न लगे दिठोना लगाती थीं जब-जब मुझे इसका स्मरण हो आता है तब-तब मैं मन में विशेष प्रकार की वेदना का अनुभव करता हूँ ॥४६॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[५०]

तैलाभ्यङ्गं स्नपनसलिलं कञ्जलं चानुवीक्ष्य,
 रोषात् कृष्णः विशति विपिनं यामि तञ्चानयामि ।
 तस्मै प्रेम्णा प्रतिदिनमहो दीयते प्रातराशः,
 जानासि त्वं तदपि कथयामीति ते सूनुचेष्टाम् ॥

श्रीयशोदा कहती हैं—उद्धव ! मथुरा जाकर देवकी से कहना कि मैं तेल, उवटन, स्नान का जल, काजल की डिबिया पास में रखकर जब कन्हैया को बुलाती थी तब वह इन्हें देखकर क्रोध से घने जंगलों में चला जाता था । मैं जाती थी और उसे बातों में लगाकर पकड़ कर लाती थी, नहला-धुलाकर प्रतिदिन कलेबा कराती थी; यद्यपि आप इन सब बातों को जानती ही हैं तथापि मैं आपको स्मरण कराने के लिये आपके पुत्र की प्रतिदिन की चेष्टा बतला रही हूँ ॥५०॥

[५१]

माता नाहं तव तनययोः सैव धात्री त्वधन्या,
 सन्देशं मे कथय प्रकृतं देवकीमुद्धव ! त्वम् ।
 नित्यं रात्रौ हरिहलधरौ तावकीनौ वदामि,
 हाऊत्रस्तौ मम धृतपटौ कण्ठलग्नौ शयाते ॥

माँ यशोदा कह रही हैं—उद्धव ! तुम देवकी से मेरा यह सन्देश कहना कि—मैं तुम्हारे हरि हलधर दोनों पुत्रों की माँ नहीं हूँ, मैं तो केवल मात्र एक अभागिनी धाय हूँ किन्तु एक बात है कि तुम्हारे वे हरि हलधर पुत्र रात्रि को हाऊ के भय से मेरे कण्ठ और वस्त्र पकड़ कर कहीं मैं अन्यत्र चली न जाऊँ मेरे साथ सोते थे ॥५१॥

[२८]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[५२]

सहसा 'नन्दालय' में एक सारिका (मेना) आती है और श्रीराधिका की दिव्योन्माद दशा वर्णन के साथ प्रच्छन्न रूप में व्यक्त शब्दों द्वारा उद्धव से कुञ्ज में जाने का अनुरोध करती है—

मानं त्यक्त्वा चल सखि ! हरेः मञ्जुलां कुञ्जवाटीं,
 हित्त्वा त्वां सः व्रजति वनितासंयुतः कामपीडासु ।
 क्वासि क्वास्से वृषरविसुते ! हन्त ! रोदित्यभीक्ष्णं,
 दिव्योन्मादप्रकटितदशां सारिकानुब्रवीति ॥

ललिता मानिनी श्रीराधा से कह रही हैं— सखि ! बहुत समय हो गया मान छोड़ो । शीघ्र कुञ्ज में पधारो । वहाँ श्यामसुन्दर अनेक गोपियों के होने पर भी बिना आपके कामवेदना से व्यथित हो रहे हैं और कभी हा राधे ! हा वृषभानुनन्दिनि । कह कर निरन्तर रो रहे हैं । इस श्रीराधाकृष्ण की दिव्योन्माद दशा की उन सुनी हुई बातों को सारिका ने दुहराया ॥५२॥

[५३]

विद्युद्वासः पृथुकटिलसत् किङ्किणीं हीरहारां,
 वृद्धां श्रद्धास्तरणशरणां जातरूपानुरूपाम् !
 राधाकृष्णप्रथममिलनालम्बलीलावलम्बां,
 कुञ्जागारे यदुपतिसखा पूर्णमासीं वन्दे ॥

उद्धव ने 'माधवी कुञ्ज' स्थान पर पीतकौशेय वस्त्र और अपने विशाल कटि पर काञ्चन करधनी तथा कण्ठ में हीरों का हार धारण करने वाली, श्रीराधाकृष्ण के प्रथम प्रणय की अवलम्ब-स्वरूपा परम श्रद्धास्पदा, वृद्धा स्वर्णकान्तिमय, पूर्णमासी पुरोहित-ललना की वन्दना की ॥५३॥

[२६]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[५४]

स्रंसद्वेणीं मलिनवसनां जर्जरां क्षामदेहां,
क्षोणीलग्नां विरहविधुरां रोदमानां विषण्णाम् ।
व्याधिग्रस्तां विविधवनिताव्रातवर्द्यानुवन्द्यां,
शुष्यत्स्वर्णाम्बुजदलमुखीं राधिकां सन्ददर्श ॥

उद्धव ने कुञ्ज-कुटीर के उस श्यामतमाल के नीचे जिसके वेणी बन्धन खुले हुये हैं, जो मलिन वस्त्र धारण कर रही हैं जिन्होंने सौभाग्यचिह्न सिन्दूर और चूड़ियों के अतिरिक्त सम्पूर्ण अलङ्कार उतार दिये हैं जिनकी देह प्रियतम वियोग के कारण सूखी और जर्जर हो गई है, जो निरन्तर रुदन और खिन्नता के कारण पृथ्वी पर समाये जा रही हैं, जो अनेक प्रकार शोकजन्य व्याधि से ग्रस्त, सूखे हुये स्वर्ण कमल के समान व्रजाङ्गनाओं से वन्दित श्रीमती राधिका को देखा ॥५४॥

[५५]

विद्युत्स्नातां विपिनवनितावर्गवन्द्यां विशुद्धां,
लोकालोकां ललितलतिकालोकलावण्यलक्ष्मीम् ।
हा प्राणेश ! प्रिय ! व्रजनिधे ! क्वासि वाक्यं वदन्तीं,
कृष्णाराध्यां धृतधृतिधराधारराधां ददर्श ॥

विद्युत् प्रकाश से स्नान की हुई, व्रजाङ्गनाओं से वन्दित, समस्त लोकों को अपनी प्रभाकान्ति से आलोकित करने वाली, ललितलतिका के समान सुन्दर सौष्ठवमयी, हा प्राणेश ! प्रिय ! व्रजनिधे ! आप कहाँ हो ? वाक्यों को बार-बार कहती हुई श्रीकृष्ण की परम आराध्या, धृतिधरा की आधारस्वरूपा, विशुद्धा श्रीमती राधा को उद्धव ने देखा ॥५५॥

[३०]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[५६]

सन्देशोऽयं मधुरिपुपुरात् प्रेषितः माधवेन,
नैकान्तत्वात् कथयितुमहो पूर्वमेवासमर्थः ।
दूरीभावः व्रजपरिसरात् केन दोषेण मे हा !,
याचे वृन्दाविपिनवसतिं चापराधात् क्षमस्व ॥

उद्धव कहते हैं—व्रज गोपिकाओ ! मथुरा से श्रीकृष्ण ने आप सबो के लिये यह सन्देश भेजा है जिसे मैं पहिले एकान्त में समय न मिलने के कारण आप से नहीं कह सका । उन्होंने पूछा है कि आप सबो ने मुझे किस अपराध के कारण वृन्दावन से बाहिर निकाल दिया ? यदि कोई अपराध मुझसे बन गया हो तो उसे अपने क्षमाशील गुणों से क्षमा कर मुझे फिर वृन्दावन बुला लीजिये, यही मेरी बार-बार आपसे विनय है ॥५६॥

[५७]

ब्रह्माख्यः यः प्रकृतपुरुषः शुद्धसत्त्वप्रकाशः,
साक्षी चेता स्थितिलयकृतिः निर्गुणः निर्विकारः ।
वातव्योमावनिजलजगज्ज्वालजालप्रकर्त्ता,
साक्षादीशः स इह जगतां तापपापहर्त्ता ॥

उद्धवजी कहते हैं व्रजाङ्गनाओ ! जिन श्रीकृष्ण के वियोग में तुम दुःखित हो रही हो वह साक्षात् शुद्ध सत्त्व प्रकाशमय, जन-जन के चित्त का साक्षी, पूर्णब्रह्म, पुरुषोत्तम, निर्गुण, निर्विकार ईश्वर है, जो अपनी अचिन्त्य शक्ति से इस पञ्चतत्त्वात्मक जागतिकजनों का उत्पत्ति स्थिति संहार - स्वरूपकर्त्ता के रूप में उनके पाप-तापों को दूर करता है ॥५७॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[५८]

आकाराणां स्थितिरिति कुतः ? ब्रह्मणः निर्विशेष-
सिद्धान्तानां सहजसरणिः शास्त्रसिद्धा प्रसिद्धा ।
दारागारात्मजधनधराधारधामप्रकल्पं,
मिथ्याभूतं भज यदुपतेरुत्तमं योगमार्गम् ॥

उद्धव कहते हैं—व्रजाङ्गनाओ ! उस सत्त्वात्मक ब्रह्म को क्या कभी किसी ने आकार रूप में देखा है ? उस निर्विशेष ब्रह्म की निराकारता शास्त्रों में सदा से ही प्रसिद्ध रही है । सांसारिक परिदृश्यमान स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, धरा, सब मिथ्याभूत हैं । अतः श्रीकृष्ण ने आपके लिये योग-मार्ग ही श्रेष्ठ है इसका आप्त उपदेश दिया है ॥५८॥

[५९]

'नास्ते' कृष्णस्तव निजपतिः सोऽस्ति स्वामी जगत्याः,
चेष्टाहीनः प्रलयपरिधिः निर्विकल्पः निर्गूढः ।
सत्तामात्रः भवदवहरः सच्चिदानन्दकन्दः,
मिथ्याध्यासात्मकजगदिदं सत्तमो योगमार्गः ॥

उद्धव कहते हैं—व्रजगोपिओ ! जिन श्रीकृष्ण को तुम अपना निजपति बतला रही हो वह तुम्हारा पति न होकर समस्त जगत् का एक मात्र स्वामी है । वह निर्विकल्प, चेष्टाहीन, निर्गुण के साथ प्रलय की प्रकृत परिधि अर्थात् सीमा है । संसार में वह सत्ता के कारण-स्वरूप सांसारिक बाधाओं के संहारक सच्चिदानन्दघन अप्रत्यक्ष परमात्मा है । यह संसार मिथ्याध्यासस्वरूप है यदि कोई उचित और श्रेष्ठ मार्ग उसकी प्राप्ति का है तो वह योग मार्ग ही है ॥५९॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[६०]

तूष्णीमास्तां वदनपवनव्याधिग्रस्तात् प्रशस्तात्,
वक्तुं भर्तुश्चरितममलं सर्वथैवासमर्थः ।
योगाभ्यासप्रकृतविकृतः ज्ञानविज्ञानहीनः,
तस्माद् गच्छ प्रिय ! मधुपुरीं शिक्षिता योगरोतिः ॥

व्रज गोपिका कहती है, उद्धवजी ! बहुत कह चुके । अब तनिक चुप हो जाईये । बार-बार हकलाने से आप भली भाँति अपने स्वामी के स्वच्छ रूप को कह नहीं पा रहे हैं । ज्ञान-विज्ञान की उचित शिक्षा प्राप्त न होने से आप योग के वास्तविक रहस्य को विकृत रूप से कह रहे हैं । हम भली भाँति आपसे योग सीख चुकीं, अब आप सीधे मथुरा पधारिये ॥६०॥

[६१]

नीलाम्भोदोन्मद्वररुचिः वहंपिच्छाच्छमौलिः,
कर्णस्वर्णोत्पलदलचलः नेत्रयोः कज्जलश्च ।
लीलालास्याधररससुधाधारवंशीविलासः,
कृष्णः सोऽयं हृदि मम सदा राजते गोपवेशः ॥

गोपियाँ कहती हैं—उद्धवजी ! जिस हमारे प्राणनाथ श्याम-सुन्दर को आप निराकर ब्रह्मरूप में उपस्थित कर रहे हैं वह आपका निविशेष ब्रह्म हमारे मन में साकार घनश्याम, मोरमुकुट एवं कानों में स्वर्ण कुण्डलधारी, हम से अपने नेत्रों में काजल लगावा कर अपने अधर सुधारस से आप्लावित वंशी को धारण कर गोपवेश नटवर-नागर श्रीकृष्ण के रूप में सुशोभित हो रहा है ॥६१॥

[३३]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[६२]

रासोल्लासोल्लसितललितामन्दमञ्जीररावः,

कण्ठाश्लेषोत्करकररणत्कङ्कणः कुन्दमालः ।

प्रातः दध्नः मथनसमये न्यस्तहैयङ्गवीनः,

रूपोद्भेदः विलसति हरिः गोपिकानां हृदिस्थः ॥

गोपिका कहती है—उद्धवजी ! रास में जिसके चरणों के नूपुर मृदु मधुर मन्द ध्वनि से बज रहे हैं । गोपियों के कण्ठाश्लेष के कारण जिनके हाथों के कङ्कण शब्दायमान हो रहे हैं, प्रातःकालीन दधिमन्थन का माखन जिनके हाथों में है—वे कुन्द की माला धारण करने वाले श्यामसुन्दर आज भी अनेक सुन्दर रूपों से हम गोपियों के हृदय में विलास कर रहे हैं । तुम व्यर्थ में उन्हें निर्विकल्प, निगूढ रूप में उपस्थित कर उनके सदा साकार रूप की विडम्बना कर रहे हो । अब आप ही बताइये हम उस साकार को निराकार रूप में किस प्रकार मानें ॥६२॥

[६३]

सोऽयं कृष्णः नवनटवरः श्यामलः नन्दसूनुः,
चौराचार्यः मधुरंमुरलीवादनानन्दमूर्तिः ।
राधापादाम्बुजमधुकरः रासलीलानुरक्तः,
योगः योग्यः मधुपतिकृते मत्कृते तद्वियोगः ॥

व्रज गोपियाँ कहती हैं—उद्धवजी ! यह वही नटवर श्रीराधा-चरणकमलों का मधुकर, रासलीला में अनुरक्त, चोरों के सरदार श्यामसुन्दर हैं जो अपनी मुरली के स्वरों से हमारे हृदयों में आनन्द-रस की वर्षा करते रहते हैं । आप जो हमें योग का उपदेश दे रहे हैं वह कुब्जा का उनके साथ योग (संयोग) उन्हीं के लिये योग्य है । हमारे लिये तो उनका वियोग ही श्रेष्ठ है । उद्धवजी ! आपकी बुद्धि की बलिहारी है जो श्यामसुन्दर को योग देकर हमें वियोग दे रहे हैं ॥६३॥

[६४]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[६४]

तस्य श्रुत्वा कतिष्ठलकथाः जायते कर्णपीडा,
कुब्जाक्रीडा निरवधि शिरोवेदनां संविधत्ते ।
मिथ्यालापे भवति च घृणा जायते नानुरक्तिः,
तस्मात्तूष्णीं भव हरिसखे ! भण्यतामन्यवात्ताः ॥

एक व्रज गोपी कहती है—

उद्धवजी ! उस कृष्ण कन्हैया की कितनी ही छलमरी
कथाओं को सुनकर हमारे कान पक गये हैं । उस कुलटा कुब्जा के
साथ उनकी कामक्रीड़ाओं की कहानियों ने हमारे मस्तकों में सहती
वेदना उत्पन्न कर दी है । आप क्यों बार-बार उनके दुर्गुणों को
छिपाने की चेष्टा कर रहे हैं ? हमें उनके गहित कार्यों से घृणा है
आप कितना ही क्यों न कहें हमारी उनमें तनिक भी अनुरक्ति नहीं
है, अतः आप चुप हो जाईये और दूसरी बातें करिये ॥६४॥

[६५]

वह्मचस्तेनावनिपतिसुताः हन्त ! संस्वीकृतास्ताः,
कुब्जायै सत्प्रमुखमहिषीस्थानमिष्टं प्रदिष्टम् ।
काचिन्नास्तिक्षतिरिति च मे श्यामलोऽसौ मदीयः,
कामार्त्ताः हि प्रकृतविकृताः प्रायशः सम्भवन्ति ॥

व्रजाङ्गना कहती है—उद्धवजी ! हमने सुना है कि प्राणनाथ
श्यामसुन्दर ने अनेकों राजाओं की कन्याओं के साथ अपने विवाह
का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है और साथ ही कुब्जा को अपनी
पटरानी बनाया है, इसमें हमारी कुछ भी हानि नहीं है अन्त में
श्रीकृष्ण तो हमारे ही हैं और हमारे ही रहेंगे, कारण काम से
पीड़ित व्यक्ति प्रायशः विकृत मस्तिष्क के होते हैं ॥६५॥

[३४]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[६६]

बारम्बारं वदसि जडवत् कृष्ण इत्थं मदीयः,
 मुग्धे ! बुद्धिः व्यपगततरा कोऽस्ति केषां पृथिव्याम् ।
 सोऽस्ति साक्षात् श्रुतिततिपतिः विष्णुरध्यात्मदीपः,
 नित्यानन्दो हरिरणुरथ व्यापकः निर्विकल्पः ॥

उद्धवजी कहते हैं—गोपियो ! तुम बार-बार मूर्ख की भाँति श्रीकृष्ण हमारे हैं यह क्यों कह रही हो ? तुम्हारी बुद्धि मारी गई है । भला इस संसार में कोई किसी का कमी हुआ है ? वे साक्षात् नित्यानन्दमय अणु और विभु होने के साथ निर्विकल्प अध्यात्म-प्रकाशदीप, अच्युत, विष्णु हैं जिनकी सदा श्रुतियाँ-स्तुति करती रहती हैं ॥६६॥

[६७]

शान्तं पापं व्रज हरिसखे ! राजधानीं प्रकामं,
 स्वच्छं मार्गं सहजसरलं वक्रता नास्ति तस्मिन् ।
 योगः प्रोक्तः व्रजनवधूटीकृते यस्त्वयाद्य,
 तत् संसिद्धौ तरुणमृगसच्चर्मणां का व्यवस्था ? ॥

व्रज गोपिका कहती हैं—

उद्धवजी ! आप बहुत कुछ कह चुके । अब शान्त हो जाईये । हम पर कृपा कर अब मथुरा पधारिये । यहाँ से मथुरा का मार्ग सीधा और सहज है । मार्ग में कहीं भी कोई रुकावट नहीं है, पर जाते-जाते यह तो बतलाते जाईये, आपने जो अभी-अभी सहस्रों व्रजबालाओं को योग का उपदेश दिया है ठीक है, पर उनके लिये उतनी मृगछालाओं की भी कुछ व्यवस्था की है ॥६७॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[६८]

यः कौमारव्रतमपहरत् मोहयित्वा जगाम,
वृन्दारण्यात् मधुपुरदिशं चौरवत् शौरिमौलिः ।
कृत्यं तस्याविधिविलसितं सर्वथा निन्दनीयं,
मुक्तिः नास्ति क्वचिदपि धरातङ्कशङ्काकलङ्कात् ॥

व्रजाङ्गना कह रही हैं—उद्धवजी ! उस शौरिवंश शिरोमणि कृष्ण की कथा कहाँ तक कहें, जो हम व्रज कुमारियों के कौमारत्व का अपहरण कर हमें मोह बन्धन में फाँस चोर की भाँति वृन्दावन से मथुरा चला गया ।

उसका यह विधि विरहित कार्य सर्वथा निन्दनीय है । चाहे वे अपने मन को कितना ही समझा लें किन्तु उनका इस पृथ्वी में शङ्का कलङ्क से कहीं भी छुटकारा नहीं है ॥६८॥

[६९]

कां वा ब्रूमः यदुपतिसखे ! वृष्णिवंशप्रशंसां,
वृन्दारण्यात् गतवति हरौ बुद्धिभ्रंशः प्रजातः ।
वारस्त्रीभिः सह प्रणयता सन्निधिः नानुनिन्द्या,
लोके प्राप्ता कलिकलुषता तैलविन्दुप्रसारा ॥

व्रज गोपिका कहती हैं—उद्धवजी ! हम तुम्हारे वृष्णि वंश की कहाँ तक प्रशंसा करें । वृन्दावन से मथुरा जाकर श्यामसुन्दर की बुद्धि में पत्थर पड़ गये हैं । आप ही बतलाईये कि वेश्याओं के साथ निरन्तर रहना या उनसे स्नेह सम्बन्ध रखना क्या संसार में निन्दनीय नहीं है ? लोक में कलङ्क जल में तेल की बूँदों के समान फैलता है ॥६९॥

[७०]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[७०]

गत्वा ! ब्रूहि ! स्मरवररुचि विस्मृतास्तेः कथार्थाः,
 कुब्जाश्लेषे क्षतिरिति न मे हास्यतामेव यासि ।
 वाञ्छा ते चेत् परिणयविधावर्गजा नास्ति काचित्,
 पङ्गवः खंजाः नयनरहितास्तत्र वह्नयः वसन्ति ॥

गोपिका कहती है—उद्धवजी ! मथुरा जाकर अपने सखा से कहना कि व्रज की वह बातें भूल गये जिन्हें कहते तुम थकते नहीं थे । साथ ही यह भी कहना कि कुब्जा के साथ दिन रात रहने तथा आलिङ्गन करने से हमारी कोई हानि नहीं है उन्हीं की ही हंसी है, यदि उनकी अब और विवाह करने की इच्छा है तब हमारी ओर से कोई रुकावट भी नहीं है । जहाँ चाहे विवाह करें, मथुरा में लंगड़ी, लूली, अन्धी, कानियों की कोई कमी नहीं है ॥७०॥

[७१]

अष्टावक्रां कुटिलकुलटां चोग्रगन्धप्रवाहां,
 नश्यन्नासां वदनविलसन्नागवल्लीरसाढ्याम् ।
 दाढ्यैः दन्तैः विहसितमुखीं कोटिकुंठां करालां,
 कुब्जारूपां निजप्रणयिनीं सेवते राजधान्याम् ॥

व्रज गोपिका कहती है—उद्धवजी ! आठों अङ्गों से टेढ़ी, जिसके शरीर से उग्र दुर्गन्ध आ रही है, जो नाक से नकड़ी और पानों से जिसके होठ लाल हैं, जिसके बड़े-बड़े दाँत हैं और जो बिना किसी बातों के हंसती रहती है, ऐसी कुटिल, कुलटा, मयङ्कर आकृति वाली कुब्जा को श्यामसुन्दर ने अपनी पटरानी बना कर राजधानी में रखा है क्या यह उनको शोभा देता है ? ॥७१॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[७२]

कुब्जानामा नवप्रणयिनी हुंकृतिः घोररूपा,
 नासाल्लावा मलिननयना पूतिवातोद्गन्धा ।
 न्यच्छव्यङ्गा विवृतवदना नीलधाराधरोष्ठा,
 शेते पार्श्वे कथमिह न ते कापि लज्जा घृणा वा ? ॥

व्रज गोपिका कहती हैं—

उद्धवजी ! श्रीकृष्ण से जाकर कहना कि हमने सुना है
 तुम्हारी नई नवेली दुलहन जब सोती है तब जोरों से हुंकारें भरती
 है, नाक से सदा पानी टपकता रहता है, जिसकी आंखें कीचड़ से
 भरी हुई हैं, जो बार-बार अधोवायु से वातावरण को दुर्गन्धित
 करती रहती है, जिसके मुख में काली-काली झाँई पड़ी हुई है, जिसका
 मुख सदा फटा-सा रहता है, जिसके नीले काले होठ हैं ऐसी फूहड़
 कुब्जा के साथ आप एक शय्या पर किस प्रकार सोते हैं ? क्या
 आपको उसके साथ सोने पर घृणा और लज्जा नहीं आती ? ॥७२॥

[७३]

कृष्णः प्रेष्ठः वसति मथुरायां परित्यज्य बन्धून्,
 त्यक्त्वा राधारतिमतिशयप्रीतिरीति सुभद्रम् ।
 राधाकृष्णौ निरवधि जनाः साग्रहं सम्भजन्ते,
 कुब्जाकृष्णौ जगति कथय क्वापि केन प्रयुक्तः ? ॥

व्रज गोपिका कहती हैं—उद्धवजी ! प्राणनाथ नन्दनन्दन
 अपने निजीजनों को छोड़कर मथुरा में जा वसे हैं यह भी ठीक है ।
 साथ ही हमारी लाडिलीजू के प्रणय बन्धन को उन्होंने तोड़ दिया है
 यह भी कार्य उनका उचित है परन्तु यह तो बतलाते जाइये कि
 संसार में आज भी कोटि-कोटि मानव आग्रह पूर्वक श्रीराधाकृष्ण
 की रटना लगाये रहते हैं भला कभी किसी ने भूलकर भी उन्हें
 कुब्जाकृष्ण कह कर पुकारा है ॥७३॥

[३९]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[७४]

यावद् गन्धः कलितकुसुमे सन्ति तावन्मिलिन्दाः,
यावत् पूर्णं सरसि सलिलं सन्ति तावन्मरालाः ।
यावत्स्विष्टं फलमथ तरौ सन्ति तावद्विहङ्गाः,
दृश्यन्तेऽस्मिन् जगति सकलाः प्रायशः स्वार्थग्रस्ताः ॥

व्रज गोपिका कह रही है—उद्धवजी ! जब तक पुष्पों में गन्ध है तब तक झमरों की पंक्तियाँ पराग रसास्वादन के लिये आती रहती हैं, जब तक सरोवरों में जल भरा रहता है तब तक हंसों का वहाँ निवास रहता है एवं जब तक वृक्षों में फल हैं तब तक दूर-दूर से पक्षियों की श्रेणी आती रहती है अतः यह सम्पूर्ण संसार स्वार्थमय है । आप उस स्वार्थी से यह जाकर कहना ॥७४॥

[७५]

यहाँ व्रज गोपियाँ श्रीकृष्ण के विरह में व्यथित हो रही थीं उसी समय वृन्दा मथुरा की ओर से आती हुई दिखलाई दी जिसको देखकर व्रज-गोपियाँ पूछने लगीं—

कस्माद्वृन्दे ! सहचरि ! हरेः पादपद्मात् कुतोऽसौ ?
कुब्जागारे किमिह कुरुते ? द्यूतक्रीडां गुरुः कः ? ।
क्रूराक्रूरः धनमिह कुतः ? चञ्चलानुप्रदत्तं,
मिथ्यालापः कथमिह भवेत् ? सत्यमेव ब्रवीमि ॥

वृन्दे ! बतलाओ तुम कहां से आ रही हो ? वृन्दा कहने लगी—मैं श्रीकृष्ण के श्रीचरणों से होकर आ रही हूँ । वे प्राणनाथ कहां हैं ? वे कुब्जा के महलों में हैं । वहाँ वे क्या कर रहे हैं ? कुब्जा के साथ पासा खेल रहे हैं । उनका संचालक गुरु वहाँ कौन है ? वही क्रूर अक्रूर है । धन कहां से मिल रहा है ? धन की वहाँ क्या कमी है । कुब्जा की सखियाँ थैली भर-भर कर उन्हें दे रही हैं । तू झूठ कह रही है, कहीं ऐसा हो सकता है ? नहीं मैं यह सब बातें सच कह रही हूँ ॥७५॥

[७६]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[७६]

चित्रे ! चेतः मम वत हृतस्तेन नन्दात्मजेन,
 सोऽसौ साक्षाद्विधुवरमुखः मेऽस्ति हा ! दृक्चकोरः ।
 ❀मन्दाक्रान्ता मधुरमुरलीवादनोन्मादरावः,
 दुःखं सेहे तदपि कमलाकान्तपुर्यां न यामि ॥

व्रजगोपियाँ परस्पर में कहती हैं—

अरी चित्रे सखि ! मेरा मन उस नन्द के छलिया ने हर लिया है, उसका मुख चन्द्र के समान है और मेरी ये दोनों आँखें चकोर की भाँति सुधा रस का पान कर रही हैं । उसकी मधुर मुरली की तान ने मुझ अभागिन को बहुत सताया है । मैं दुःखों को सह लूँगी पर भूल कर भी कभी कमलाकान्त नगरी मधुपुरी नहीं जाऊँगी ॥७६॥

[७७]

एषा काकभ्रमरभुजगश्यामता दृश्यमाना,
 गोपस्त्रीणां विरहदहनोत्क्षिप्तधूमप्रभावा ।
 घोरक्लेशा तिमिरपटला कालरूपा त्रियामा,
 तासामेवासिततरवहृदू मरेखाप्रसूतिः ॥

गोपियाँ परस्पर कह रही हैं— सखि ! संसार में काक, भ्रमर, और सर्पों में जो कालापन दिखलाई दे रहा है वास्तव में उनका वर्ण काला नहीं है यह तो व्रजगोपियों के प्राणनाथ श्यामसुन्दर के विरहाग्नि से उत्थित धूम का प्रभाव है जो उनके शरीर पर लगने से वे काले हो गये हैं तथा यह तमोमयी भयङ्कर कण्टकारिणी कालरूपा रात्रि भी इन्हीं गोपियों के विरहजनित अग्निधूम का ही प्रभाव है जो यह पूर्ण विमल विभावरी अन्धकारमयी दिखलाई दे रही है ॥७७॥

❀ मन्दाक्रान्ता छन्द ।

[४१]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[७८]

दग्धाः वृक्षाः जगति सकलाः पुष्पिताः यूयमत्र,
लज्जाहीनाः कपटपटलीमादधन्तः कदम्बाः ।
नेत्रं वृन्दाविपिनमहिमा नोऽम्बुदानां विलासः,
सत्यं नामग्रहणगुरुता दक्षिता सा भवद्भिः ॥

व्रजगोपियाँ व्रज के सम्पूर्ण वृक्षों को श्रीकृष्ण के विरह
ज्वाला से नष्ट एवं पुष्पित कदम्ब को देखकर कहती हैं—

कदम्ब ! संसार के सम्पूर्ण वृक्ष श्रीकृष्ण के तीव्र वियोगाग्नि
से जलकर नष्ट हो गये हैं किन्तु बड़े आश्चर्य का विषय है कि तुम
उनके प्रिय होकर भी फूले नहीं संमा रहे हो । वास्तव में तुम
बड़े निर्लज्ज एवं कपटी हो, तुम इसे वृन्दावन की शोभा बतलाकर
प्रसन्न हो रहे हो । क्या यह वृन्दावन की महिमा है अथवा वारि-
वर्षण का विलास है ? वास्तव में तुमने अपने नाम कदम्ब अर्थात्
कुत्तिसत-अम्ब की गुरुता का प्रदर्शन किया है ॥७८॥

[७९]

आयातस्त्वं मुररिपुपुरात् योगशिक्षार्थमत्र,
हित्त्वा शिक्षां वदति च भवान् विप्रयोगान् प्रयोगान् ।
अस्माकीने मनसि वसति श्यामलः नन्दसूनुः,
मिथ्याभ्यासः कथमिह भवेत् निर्गुणस्य प्रवेशः ॥

व्रजगोपिका कहती हैं—उद्धवजी ! आप प्राणनाथ श्याम-
सुन्दर के कहने से हम गोपिकाओं को योग की शिक्षा देने यहाँ
पधारे हैं किन्तु अत्यन्त दुःख का विषय है कि आप योग की शिक्षा
न देकर वियोग का उपदेश दे रहे हैं । हमारे मनों में केवल
श्यामसुन्दर नन्दनन्दन विराजमान हैं मला उसमें किस प्रकार
निर्गुण ब्रह्म का प्रवेश हो सकता है । आपका यह अभ्यास वास्तव में
मिथ्या रूप ही है ॥७९॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[८०]

कृष्णं ब्रूहि स्मर-तु भवता लोकलावण्यहेतोः,
नन्दद्वारि द्विदलवलयः रोपितः यः कदम्बः ।
नित्यं रागमृगमदपयोशीकरैः सिच्यमानः,
सोऽयं फुल्लस्तुदति च चिरं वल्लवीनां वधूटी ॥

व्रजगोपिका कहती है—उद्धवजी ! मथुरा जाकर प्राणनाथ श्यामसुन्दर से कहना कि—आपको कुछ स्मरण है जब आपने हमारे सामने 'नन्दालय' के द्वार पर सुन्दर सौरभता संचार के लिये दो पत्तों की कदम्ब की डाल लगाकर नित्य केशर, कस्तूरीमिश्रित दूध की धारा से सिचाई की थी, आज उस कदम्ब में फूल आ गये हैं बिना आपके हम व्रजवाला उसे देखकर बहुत व्यथित हो रही हैं ॥८०॥

[८१]

वाञ्छा नान्या स्वयमपि हि मे सम्भवेद्देहपातः,
देहस्यास्यासिततममसी लेखनी तेन चास्थना ।
कृत्वा पत्रं हृदयवलयं संलिखिष्यामि कृत्स्नं,
विश्वासोऽयं क्वचिदपि भवेत् श्रीमतां दृष्टिपातः ॥

चित्रा सखी कह रही है—उद्धवजी ! मेरी अब इसके अतिरिक्त और कोई कामना नहीं है यदि मेरी अपने आप मृत्यु हो जाय तब इस चित्रा भस्म की मैं काली स्याही और अस्थियों की कलम एवं हृदय को पत्र बनाकर अपने प्रियतम को अपनी विरह-वेदना की कहानी लिखूंगी । मुझे पूर्ण विश्वास है कि कभी न कभी तो प्राणनाथ की इस पत्र पर दृष्टि अवश्य पड़ेगी ॥८१॥

[४३]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[८२]

कृष्णं ब्रूहि व्रजपतिसखे ! शीघ्रमेव प्रयाहि,
वृन्दारण्यं निजप्रियजनान् वीक्षितुं वारमेकम् ।
मिथ्योपेक्षा यदि च भवतां सम्भवेद् द्रक्ष्यसि त्वं,
ज्वालाजालज्वलितवनिताभूतिमेवावशिष्टाम् ॥

व्रजाङ्गनायें कहती हैं—उद्धवजी ! तुम प्राणनाथ श्रीकृष्ण से जाकर कहना कि एकबार अपने प्रियजनों—जो आपके वियोग में व्यथित हो रहे हैं—को देखने के लिये श्रीवृन्दावन पधारिये यदि इस विषय में उनकी तनिक भी मिथ्याकल्पना अथवा उपेक्षा हुई तो फिर विलम्ब से वृन्दावन में जाने पर केवल विरहज्वालाजनित गोपियों की चिन्ताभस्म ही आपको देखने को मिलेगी ॥८२॥

[८३]

उसी समय कुञ्जकुटीर पर सहसा एक भ्रमर जो बार-बार श्रीमती राधिका के श्रीचरणों के स्पर्श को आता है जिसे देखकर—

एकः कृष्णः कनकपटलः सम्भ्रमन् मञ्जुरावः,
दूरादेत्य स्थलकमलिनीगन्धसम्बन्धवन्धः ।
राधापादद्वयसरसिजस्पर्शभीतिप्रतीतः,
बारम्बारं प्रणमति चिरं माथुरोऽसौ मिलिन्दः ।

व्रजाङ्गना कहती है—सखि ! सच पूछो तो हमारे श्याम-सुन्दर बड़ी दूर मथुरा से भ्रमर रूप में यहाँ आये हैं । वही श्याम-वर्ण, वही पीताम्बर की पीत रेखायें, चारों ओर घूम-घूम कर मुरली की तानों के समान वही गुञ्जन है । यह हमारे मुखपद्मों की गन्ध के सम्बन्ध से आये हैं । देखो न श्रीराधाजी के चरणकमलों के स्पर्श से यह भ्रमर कितना भयभीत हो रहा है और बार-बार उनके समीप अपना मस्तक झुकाता हुआ अपने अपराधों की क्षमा याचना कर रहा है ॥८३॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[८४]

दूरं गच्छ द्रुतमलिपते ! क्रूर ! चाक्रूरबन्धो !,
सन्ति कृष्णाः जगति कुटिलाः नात्र सन्देहलेशः ।
कुब्जा राज्ञः प्रथितमहिषी राजते राजधान्यां,
तस्याः पादद्वयप्रणमनात् लप्स्यसे सर्वसिद्धिम् ॥

गोपिका कहती हैं—हे अमर ! तुम शीघ्र ही यहाँ से दूर चले जाओ । हे क्रूर ! अक्रूरबन्धो ! इस संसार में जितने काले हैं उतने ही वे खोटे हैं । तुम बार-बार हमारे पाँवों को क्यों छू रहे हो ? मथुरा में कुब्जा नाम की एक कृष्ण की पटरानी विराज रही है उसकी जाकर पदवन्दना करो उससे ही तुम को सर्वप्रकार की सिद्धि प्राप्त होगी ॥८४॥

[८५]

किं वा ब्रूमः चपल ! अमर ! स्वामिनस्ते कथार्थं,
रासे सत्यां नवरससुधां पाययित्वा जगाम ।
लीलालास्यावलिवलिव्रतव्रातदिद्यावलानां,
यो गोपीनां हृदयवलयं विव्यधे व्याधधर्मा ॥

व्रजगोपिका कहती हैं—अरे चपल ! अमर ! तुम्हारे स्वामी की कथा हम कहाँ तक कहें । वे नटवरनागर श्यामसुन्दर हमें रास-लीला के समय अपने अघर सुधारस का पान कराकर प्रीति बन्धन को तोड़ मथुरा चले गये । उन्होंने हमारे साथ जो क्रीड़ाएँ की थीं उसे भूलकर उन्होंने हम अवलाओं की वलि लेने का विचार किया है । वास्तव में व्याध के समान धर्माचरण करते हुये उन्होंने हम गोपियों के हृदयों को वियोग के विष बाणों से वेध डाला है ॥८५॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[८६]

कुब्जा पीनस्तनतटलसत्कुङ्कुमाङ्काङ्गराग-
स्पर्शादर्शप्रमुदित तरानङ्ग-मूर्ते ! ! शृणु त्वम् ।
मिथ्यायोगः पुनरपि न ते पुंश्चलीनां प्रयोगः,
स्वच्छीभूता तव कितवता गच्छ मार्गं यथेच्छम् ॥

व्रजगोपी भ्रमर से कहने लगी—

कुब्जा के स्तनों पर लगे हुये केशर पराग राग से प्रमुदित
रङ्गीले ! भ्रमर ! ठहरो ! तनिक मेरी बातें सुनते जाओ ।

अपने स्वामी से मथुरा जाकर यह कहना कि निरन्तर कुब्जा
जैसी वेश्याओं के साथ रहने से उद्धव को आपके द्वारा बदलाया हुआ
ज्ञानोपदेश जो हमें देने आये थे मिथ्या होकर रह गया है । मधुकर !
तुम्हारी सम्पूर्ण कथा कहानी स्वच्छ-रूप से सामने आ गई है । अब
तुम सीधे जहाँ से आये हो वहाँ ही चले जाओ ॥८६॥

[८७]

नन्दः पीताम्बरवरयुगं रोहिणी वहंपिच्छं,
स्नेहस्निग्धा विक्लजननी स्वादु हैयङ्गवीनम् ।
राधारारध्यां मधुरमुरलीं मञ्जुला गुञ्जमालं,
कृष्णायते गमनसमये संददुश्चोद्धवाय ॥

उद्धवजी के श्रीवृन्दावन से मथुरा लौटती बेला पर श्रीकृष्ण
को देने के लिये श्रीनन्दबाबा ने पीताम्बर और उपरना, श्रीरोहिणी
देवी ने मयूर के पंख, स्नेह से भरी हुई विक्ल माँ श्रीयशोदा ने
सुन्दर स्वादिष्ट ताजा माखन की हड़िया, श्रीमती राधा ने चुराई
हुई श्रीकृष्ण की मधुर मुरली एवं मञ्जुला सखी ने गुञ्जाओं की
माला उद्धव को दी ॥८७॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[८८]

नत्वा वृन्दाविपिनधरिणीं रोहिणीं श्रीयशोदां,
नन्दं धेनुतृणतरुलताः गोपगोपाङ्गनाश्च ।
राधाभावस्मरणजनितानन्दधाराभिषिक्तः,
वृन्दारण्यात् मुररिपुपुरीमुद्धवः सम्प्रतस्थे ॥

श्रीकृष्ण प्रिय सखा उद्धव श्रीराधाभावस्मरणजनित
आनन्द सुधा रस से सरावोर हो—श्रीवृन्दावन की दिव्य चिन्मय
रजःकणिकाओं से परिपूरित लीलास्थली, श्रीरोहिणी, माँ श्रीयशोदा,
बाबा श्रीनन्द महाराज व्रज की कारी, धोरी, घूसर गायें, तृण,
तरु, लता, गोप, ग्वाल, गोपाङ्गनाओं को नमस्कार कर श्रीवृन्दावन
से मथुरा की ओर प्रस्थानित हुये ॥८८॥

[८९]

पश्यन्तीनां रमणसरणिं गोपसीमन्तिनीनां,
रासक्रीडास्मरणजनितानन्दभावोद्भवानाम् ।
दुःखाम्भोधिप्रलयपरिधिप्रान्तसम्बासिनीनां,
दृष्ट्वावस्थां विरहजनितां चेतनोऽचेतनोऽभूत् ॥

अपने प्रियतम के आगमन पथ को देखती हुई, रासक्रीडा-
स्मरण-जनित आनन्दोद्भावविभावित एवं श्रीकृष्ण वियोग सागर में
आकण्ठ डूबती हुई गोपाङ्गनाओं की विरह-जनित अवस्था को देख-
कर सर्वचेतन उद्धव भी उस समय अचेतन होगये ॥८९॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[६०]

शृण्वन् सौधोज्ज्वलनवगवाक्षोत्थितख्यातगीति,
 पश्यन् दूरस्थिततपनजां मञ्जुलान् केलिकुञ्जान् ।
 आभीरीणां सरससहजस्नेहभावेन पुष्टः,
 गायन् नृत्यन् भुवि च विलुठन् कृष्णप्रेष्यश्चचाल ॥

श्रीकृष्ण द्वारा प्रेषित उद्धव नन्दालय के उन उच्च प्रासादों के झरोखों से निकलती हुई श्रीकृष्ण की ललित लीलाओं को सुनते, एवं दूर स्थित श्रीयमुना तथा मञ्जुल केलि-कुञ्जों को देखते हुये, गोपाङ्गनाओं के सहज सरस स्नेह भावों से सन्तुष्ट होकर व्रजभावविभावित हो श्रीराधा-कृष्ण के विमल विशद चरित्रों का गान, प्रेममय नृत्य तथा श्रीव्रजरज में बार-बार लोटते श्रीवृन्दावन से मथुरा के लिये प्रस्थानित हुये ॥६०॥

[६१]

गोपस्त्रीणां प्रकृतवचनैरुद्धवः दीप्तरागः,
 वृन्दारण्यस्थलभुवि लुठन् गात्रसंजातहर्षः ।
 नृत्यन् गायन् मुहुरिति वदन् घोषनारीपदाब्ज-
 रेणुं वन्दे सततमभितः भावमग्नश्चचाल ॥

गोपाङ्गनाओं के तात्त्विक वचनों से ज्ञानप्राप्त उद्धव अब श्रीवृन्दावन भूमि की परमपावन रज कणिकाओं को मस्तक पर धारण कर उस पर लोटता हुआ परमानन्द प्राप्त कर रहा है ।

उसके बेह में आठों सात्त्विक भाव उद्दीप्त हो उठे हैं, वह बार-बार व्रजाङ्गनाओं की पद रज कणिकाओं की वन्दना करता, नाचता, गाता हुआ भाव मग्न हो श्रीवृन्दावन से मथुरा के लिये प्रस्थानित हुआ ॥६१॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[६२]

ववेमाः मूढाः वनचरप्रियाः सर्वथाचारहीनाः,
भक्तिस्तासां भगवति हरावत्र सर्वं विचित्रम् ।
ताभिः गीतं चरितममलं प्रत्यहं नन्दसूनोः,
वाधाविघ्नान् हरति सकलान् लोकलोकान् पुनाति ॥

उद्धव अपने मन में पूर्ण प्रतीति कर कह रहे हैं—यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि ये सर्वथा आचारहीना मूढ वनवासियों की स्त्रियों का मन साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण में इतना क्यों रम गया है कुछ कहा नहीं जाता । उनके द्वारा प्रतिदिन श्रीकृष्ण की ललित लीलाओं का गान सांसारिक वाधा-विघ्नों के नाश के साथ-साथ समस्त लोकों को पवित्र करता है ॥६२॥

[६३]

वृन्दाटव्याः विशदविहगः वानरः वा नरो वा,
लोकालोकः सकुलशलभः कीटकोटिस्तु धन्या ।
नैवं विद्याधरनववधूलासगानानुसक्त-
स्फारस्फेरामरवरकुलालंकृतस्वर्गवर्गः ॥

उद्धवजी कहते हैं—

श्रीवृन्दावन के वे समस्त पक्षी, वानर और नर, लोकालोक, कोटि-कोटि कीट पतङ्ग सब धन्य हैं । इनके भाग्यों की समानता स्वर्ग में बैठे हृषी विद्याधरों की नव-वधूओं के उल्लासमय गान गीति से आमोदित देवगण भी नहीं कर सकते ॥६३॥

[४६]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[६४]

आगच्छन्तं व्रजपरिसरादुद्धवं मुह्यमानं,
 मुग्धीभूतः मधुपुरपतिः भावमग्नं विलोक्य ।
 ऐह्येह्येभिः मधुरवचनैरालिलिङ्गं प्रकामं,
 प्रीत्युत्कण्ठः यदुपतिपदं धारयन् संरुद ॥

व्रज वृन्दावन से अर्द्ध मूर्च्छित एवं भावमग्न अपने प्रिय सखा उद्धव को आते हुये देखकर प्रेम में परिप्लावित श्रीकृष्ण ने प्रियवन्धो ! आईये ! आईये ! इन मधुर वचनों से स्वागत करते हुये हृदय से उनका आलिङ्गन किया । उद्धव का हृदय श्रीकृष्ण की आलिङ्गनजन्य उत्कण्ठा से द्रवित हो उठा । स्वजनों को देखकर दुःख अपने आप शतगुणित हो उठता है अतः उद्धव श्रीकृष्ण के श्रीचरणों को पकड़ कर जोरों से रोने लगे ॥६४॥

[६५]

वृन्दारण्यं सरणशरणं भानुजा भानुरूपा,
 वंशीनादः विशिखसदृशः कुञ्जरारिः निकुञ्जः ।
 अङ्गाराख्यस्त्वयि गतवति प्रेष्ठ ! शृङ्गाररङ्ग
 आभीरीणां नयनसलिलं दृश्यते सिन्धुरूपम् ॥

उद्धव वृन्दावन से आकर श्रीकृष्ण से कहते हैं—

प्रिय सखे ! आपके श्रीवृन्दावन से आने के पश्चात् वृन्दावन एवं समस्त व्रज-मण्डल श्मसान के समान, शीतलतौया श्रीयमुना सूर्य के समान उत्तप्त, गोपों का वंशीनिनाद विषभरे वाण के समान, वे मञ्जुल निकुञ्जों व्याघ्र के समान भयावह, शृङ्गारमय वे रङ्ग-मञ्च जले हुये अङ्गारों के समान एवं व्रजाङ्गनाओं के विरह-जनित अभुधारार्य समुद्र का रूप लेती हुई दिखलाई दे रही है ॥६५॥

[६६]

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[६६]

कृष्णः क्रूरः कठिनहृदयः सर्वसिद्धान्तहीनः,
विद्याबुद्धिव्यपगततरः सर्वथाऽसौ कृतघ्नः ।
व्याधिव्याधव्यथितविधुराः हा ! हतास्मः ब्रुवन्त्यः,
मुग्धाः गोप्यः विरहविकलाः संरुदन्त्यः भ्रमन्ति ॥

उद्धव मथुरा जाकर व्रजाङ्गनाओं की विरह दशा का इस प्रकार वर्णन करते हैं—प्रभो ! विरहजनित व्याधि रूपी व्याध से व्यथित होकर वे व्रजाङ्गनायें विकल भाव से कृष्ण ! तुम बहुत क्रूर और कठोर हृदय के हो । साथ ही तुम सिद्धान्तहीन मूर्ख एवं सर्वथांश में कृतघ्न हो यह कहती, हा ! हा ! करती, रोती और कलपती हुई व्रज की गलियों में घूम रही हैं ॥६६॥

[६७]

नन्दज्योतिः विचलितयशोदाधृतिः भानुजाभा,
राधाकान्तिः कुसुमकलिका रोहिणीवल्लभश्रीः ।
गोपोत्क्रान्तिः व्रजवरवधूवर्गगीतिप्रतीतिः,
दूरीभूता त्वयि गतवति प्रीतिपूर्णानुभूतिः ॥

उद्धव श्रीकृष्ण से कहते हैं—प्रभो ! जब से आप श्रीवृन्दावन छोड़कर यहाँ आये हैं तब से श्रीनन्द बाबा की ज्योति, व्यथित माँ श्रीयशोदा का धैर्य, यमुना का सौन्दर्य, श्रीराधा की कान्ति, पुष्पों का विकास, चन्द्रमा अथवा माँ श्रीरोहिणी की प्रिय शोभा, गोपों का परस्पर उपद्रव, व्रजाङ्गनाओं की गीति और प्रीति की पूर्णानुभूति सर्वांशतः नष्ट होगई है ॥६७॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[६८]

वृन्दारण्यस्मरणजनितानन्दभावाब्धिमग्नः,

प्राह स्वेष्टं यदुपतिसुहृद् भग्नज्ञानप्रभावः ।
कृष्ण ! प्रेष्ठ ! व्रज व्रजमहीं नान्यथा बन्धुवर्गाः,
लीयन्ते ते नयनसलिलासारधारासरित्सु ॥

निरन्तर श्रीवृन्दावन के स्मरण जनित-आनन्द भाव सागर में
निमग्न, उद्धव सर्वथा ज्ञानरहित होकर भगवान् श्रीकृष्ण से कहने
लगे—

हे नाथ ! प्रभो ! दया कर शीघ्र व्रज वृन्दावन पधारिये यदि
आपने तनिक भी जाने में विलम्ब किया तब आपके समस्त व्रज के
बान्धवगण गोपियों के विरहजन्य नयनजलधारा में डूब
जायेंगे ॥६८॥

[६९]

धन्या गोवर्द्धनगिरितटी भानुजातीरश्रेणी,
धन्या वृन्दाविपिनवसतिः वासिनस्ते च धन्याः ।
सर्वश्रेष्ठाः मम प्रियतमाः सर्वथा बल्लभाः वै,
नन्दामन्दप्रकृतशपथेनान्वितोऽहं वदामि ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कह रहे हैं—उद्धव ! गिरि गोवर्द्धन की
तलहटी, यमुना किनारे की वे घाटों की श्रेणियाँ, श्रीधाम वृन्दावन
की वह सुरम्य कुंज-कुटीरें तथा वहाँ के व्रजवासीजन सदा धन्य हैं । मैं
बाबा नन्द की शपथ खाकर कह रहा हूँ कि इनके समान संसार में मेरा
और कोई प्रिय नहीं है वास्तव में वे मुझे प्राणों से भी अधिक
प्रिय लगते हैं ॥६९॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

[१००]

जानीमस्त्वां प्रकृतपुरुषं पूर्णरूपावतारं,
 इन्द्रारिव्याकुलितजनतानन्दरूपस्वरूपम् ।
 नौमि त्वित्वं यदुपतिकुलालकृतिं कामपूरं,
 वृन्दामन्दस्थलकमलिनीकुन्दमालं मुकुन्दम् ॥

उद्धव श्रीकृष्ण के उस दिव्य रूप का स्मरण कर भाव विह्वल हो कहते हैं—

प्रभो ! हम निश्चयरूपेण जानते हैं कि आप पूर्ण पुरुषोत्तम-स्वरूप हैं और दुष्टजनों से व्याकुलित जनता को आनन्द देने के लिये इस धराधाम पर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण रूप से अवतरित हुये हैं। हे यदुकुलावतंस ! समस्त कामनाओं की पूर्तिकारक वनमालाधारी श्रीकृष्ण ! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥१००॥

[१०१]

श्रीकृष्ण व्रजवालाओं को छोड़कर सदा के लिये मथुरा आ गये हैं उद्धव की इस अज्ञान भावना को दूर करने तथा व्रजेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्ण वृन्दावन को छोड़कर कभी अन्यत्र नहीं जाते इस धारणा को प्रमाणित करने के लिये उद्धव को युगल-स्वरूप का दर्शन प्राप्त हुआ—

नानाकारस्थितिविलसितं सच्चिदानन्दरूपं,
 नीलाम्भोजद्युतिसुवलितस्वर्णजातिप्रभाभसु ।
 'गौरकृष्ण' - प्रकृतमिलितं तत्त्वमेकत्वरूपं,
 वृन्दारण्यस्थलकमलिनीकुञ्जसंस्थं ददर्श ॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

नील कमलदलश्याम रसराज श्रीकृष्ण, स्वर्ण-जाति-प्रभामयी
महाभाव-स्वरूपा श्रीमती राधिका दोनों ही सच्चिदानन्दतत्त्वात्मक
एक ही स्वरूप हैं इस भावना को साकार करते हुये श्रीवृन्दावन-
स्थित 'स्थलकमलिनीकुञ्ज' स्थान पर उद्धव ने श्रीराधा-कृष्ण के
सम्मिलित 'गौरकृष्ण' स्वरूप का दर्शन किया ॥१०१॥

—★—

[१]

अद्यापीह व्रजभुवि युवद्वन्द्वलीलाकलानां,
सौभाग्यत्वात् निरवधि जनाः दर्शनं प्राप्नुवन्ति ।
नाशो जायेतु क्षणितपनयोः सृष्टिनाशः भवेच्च,
नित्या कृष्णप्रणयप्रकृतिः सुस्थिरा सर्वदेव ॥

[२]

नित्या वृन्दाविपिनसरणिः रासलीला च नित्या,
गोपीगोपवृत्ततल्लताश्रेणयश्चापि नित्याः ।
नित्याः राधापदसरसिजद्वन्द्वसेवाप्रभावा,
इत्यालोच्य प्ररचित इह ग्रन्थबन्धप्रबन्धः ॥

[३]

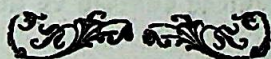
रामादीनां प्रयितचरिते स्थानवैषम्यभेदाः,
दृश्यन्ते च स्मृतिषु बहुशः क्षितसंक्षिप्तभावाः ।
तस्मादित्थं व्रजपुरवशां वर्तमानां विलोक्य,
प्रज्ञास्येतां सरसिजलजं मावकाः धारयन्तु ॥

विरहिणी-व्रजाङ्गना

आज भी व्रज और वृन्दावन में श्रीराधारमण की उन नित्य दिव्य लीलाओं का कोई-कोई भाग्यवान् जन दर्शन प्राप्त करते रहते हैं। चाहे भले ही चन्द्र और सूर्य का नाश हो जाय, त्रिगुणात्मक सृष्टि विस्तार भी सदा के लिये विनष्ट होजाय किन्तु निःसन्देह श्रीराधारमण का वृन्दावन में वह नित्य-विहार सदा स्थायीरूप से है और रहेगा ॥१॥

श्रीवृन्दावन धाम, श्रीराधारमण की रासलीलायें, गोप, गोपी, पृण, तरु, लतायें ये सब नित्य हैं साथ ही श्रीराधा के चरणकमलों की सेवा का प्रभाव भी नित्य है यह विचार कर ही इस प्रवन्धात्मक ग्रन्थ की रचना की गई है ॥२॥

श्रीरामचरितमानस आदि सुप्रसिद्ध श्रीराम भक्ति-सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों में स्थान भेद से श्रीराम कथाओं का विभिन्न रूप से वर्णन किया गया है और उसमें कितने ही अंश कथा विस्तार और रस परिवेश को दृष्टिकोण में रख कलाकारों द्वारा समाहित कर दिये गये हैं अतः व्रज और श्रीवृन्दावन की वर्तमान दशा का विचार कर मैंने भावुक भागवतजनों के कण्ठ में सादर धारण करने के लिये यह ग्रन्थात्मक माला गूँथी है ॥३॥



विरहिणी-व्रजाङ्गना

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वः,
 गोविन्द एव निखिलात्मनि रुढभावाः ।
 वाञ्छन्ति यद्भवमियः मुनयः वयञ्च,
 किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥५८॥

नायं भियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः,
 स्वर्धोषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
 रासोत्सवेऽस्य भुजवण्डग्रहीतकण्ठ-
 लब्धाशिषां य उदगात् व्रजवल्लवीनाम् ॥५९॥

आसामहो चरणरेणुषामहं स्या;
 वृन्वावने किमपि गुल्मलतोषधीनाम् ।
 पा दुस्त्यजं स्वजनमार्थपथञ्च हित्वा,
 मेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिमिविमृग्याम् ॥६०॥

— श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध ४७ अध्याय-उद्धव-सन्देश-प्रकरण



